एकता की वेदी पर

डा॰ इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'

राष्ट्रभाषा प्रकाशन
१५/२३, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

EKTA KI VEDI PAR
by
Indra Pal Singh 'Indra'

Rs 3 50

□

प्रकाशक
राष्ट्रभाषा प्रकाशन
१५/२३, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

मुद्रक
ओरिएण्टल कम्पोजिग एजेंसी
३०४३, वल्लीमारान, दिल्ली द्वारा
वेंगार्ड प्रेस, दिल्ली से मुद्रित

संस्करण
जून, १९७१

मूल्य
साढे तीन रुपये

आमुख

हमारे अतीत का इतिहास त्याग, तप, शौर्य एवं देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित है। अपने भविष्य के निर्माणार्थ प्रकाश की किरणें हम वही से प्राप्त कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से इन नाटको की रचना हुई है। प्रसाद जी के नाटको की आलोचना करते हुए किसी आधुनिकतावादी आलोचक ने अतीत की ओर देखने को 'गडे मुर्दे उखाडना' कहा था। जो लोग निष्क्रिय होकर वर्तमान के कर्दम-कलुष मे ही निमग्न रहना चाहते है, उनके लिए अतीत 'गडा मुर्दा' हो सकता है, किन्तु जो निर्माण के पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं, उनकी चेतना को जागृत करने के लिए इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो को प्रस्तुत करना आवश्यक है, विशेषत आज की परिस्थिति मे जब कि नैतिक मानो का ह्रास हो रहा है, स्वार्थपरता की नीव सुदृढ होती जा रही है; अपने आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण करना नितान्त आवश्यक है। अपने उगते हुए अकुरो एवं देश के भावी कर्णधारो के कोमल हृदयो मे हमे ऐसी भावनायें भरनी चाहिए, जिनसे उनके चरित्र का निर्माण हो सके। इसीलिए इन एकाकी नाटकों का प्रणयन हुआ है। यदि इनसे इस उद्देश्य की पूर्ति मे कुछ भी योग मिला, तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।

इस सग्रह के कई एकाकियो के रेडियो-रूपान्तर प्रसारित होकर लोकप्रिय हुए हैं ; कई एकांकी विद्यालयो के छात्रो द्वारा अभिनीत भी हुए है तथा कई विभिन्न पत्रिकाओ मे प्रकाशित भी हुए हैं, जिनके सम्बन्ध मे लेखक को उत्साहवर्द्धक पत्र प्राप्त हुए है। लेखक 'आकाश-वाणी' के अधिकारियो तथा पत्रिकाओ के सम्पादको का कृतज्ञ है। अब ये एकाकी पुस्तक के रूप मे पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

इनकी कला के सम्बन्ध मे क्या कहूँ ! इनका मूल्याकन सुविज्ञ सहृदयो पर छोडकर अपने गुरुजनो के समक्ष विनत होता हुआ इन्हे साहित्य-देवता के मन्दिर मे अर्पण करता हूँ !

—इन्द्रपालसिह 'इन्द्र'

प्रिय अनुज स्वर्गीय सुरेन्द्रपालसिह की
स्मृति मे

देश के किशोर एव किशोरियो
को
सस्नेह समर्पित

अनुक्रम

अहिंसा की विजय

पात्र

प्रसेनजित	मगध-सम्राट्
वक्रदन्त	प्रधानामात्य
मणिभद्र .	महाबलाधिकृत
गौतम बुद्ध	तथागत
अंगुलिमाल	साहसिक
भणक .	अंगुलिमाल का गुप्तचर

द्वारपाल, दो ग्रामीण

प्रथम दृश्य

सम्राट् प्रसेनजित का मंत्रणागृह

[सम्राट् प्रसेनजित सिंहासनासीन है। अवस्था लगभग ४५ वर्ष। गौर वर्ण, विशाल मस्तक आकुंचनपूर्ण, चिन्तित मुद्रा। दाहिनी ओर प्रधानामात्य वक्रदन्त—श्वेत श्मश्रु, मस्तक पर त्रिपुण्ड, पीत पगडी, अग उत्तरीय से आवृत, गम्भीर मुद्रा]

वक्रदन्त राजन्! मगध-सम्राट् के लिए एक साहसिक के कार्यो से इतना चिन्तित होना शोचनीय नही। स्वस्थ होइए और राज्य की अन्य हितकारिणी योजनाओ पर ध्यान दीजिए।

प्रसेनजित केवल योजनाओ से ही कार्य नही चलता, मन्त्रि-प्रवर! जब तक योजनाएँ सक्रिय न हो, उनसे स्पष्ट लाभ न हो, तव तक योजनाएँ काल्पनिक जगत् की वस्तु है और व्यर्थ है। राज्य मे किसी भी प्रकार शान्ति नही है। उसके आतक से प्रजा त्रस्त है और दु ख है कि मगध का वह सम्राट्, जिसके नाम से वडे-वडे नरेश नत-मस्तक हो जाते है, जिसका प्रताप आर्यावर्त मे व्याप्त है, चारण जिसका यशोगान कितने ही विशेषणो के साथ करते है, वही एक तुच्छ साहसिक का दमन नही कर पा रहा है। कितनी लज्जा की वात है यह!

वक्रदन्त इसमे लज्जा की क्या वात है, महाराज! जो व्यक्ति दीन जनता के परिश्रम से अर्जित सम्पत्ति का उपभोग

उन्ही का रक्त चूसकर करते है, उनके लिए दण्ड की व्यवस्था भगवान इसी प्रकार करता है। इसी से वह साहसिक राज-शक्ति की अवहेलना करता हुआ, जहाँ चाहता है, लूटमार करता है।

प्रसेनजित यदि इतना ही होता, मन्त्रिवर, तो चिन्ता की वात नही थी, किन्तु मेरे गुप्तचरो का कथन है कि वह निरीह शिशुओ को अपने शूल का लक्ष्य वनाता है, नारियो के सतीत्व का अपहरण करता है, ग्रामो को जलाकर श्मशान वना देता है और दीन-हीन प्रजा पर मनमाने अत्याचार करता है। मन्त्रि महोदय! उस राजा का जीवन व्यर्थ है, जो अपनी प्रजा पर हुए इन अत्याचारो की उचित व्यवस्था नही कर पाता। प्रजा सन्तान के तुल्य होती है। जो पिता अपनी सन्तान का समुचित पालन नही कर सकता, वह पिता, पिता कहलाने का अधिकारी नही।

वज्रदन्त इतनी ग्लानि न कीजिए, महाराज! महावलाधिकृत मणिभद्र उसके दमन के हेतु भेज दिए गए है। अव तक के सभी समाचार शुभ हैं। आशा है, वे अपने कार्य मे अवश्य सफल होगे।

दौवारिक (अभिवादनपूर्वक प्रवेश करते हुए)—महाराज! दो ग्रामीण आपकी सेवा मे उपस्थित होना चाहते हैं।

प्रसेनजित मेरा द्वार हर समय हर किसी के लिए उन्मुक्त रहता है, दौवारिक! यह तुम जानते हो। उन्हे मेरे समक्ष उपस्थित करो!

(दौवारिक का प्रस्थान)

अवश्य ही अगुलिमाल से पीडित-जन अपनी पुकार लेकर आए होंगे। क्या करूँ, इस दुष्ट ने तो मेरे जीवन को भार

वना दिया है ।

दोनों ग्रामीण (अस्तव्यस्त वेष-भूषा, भयातुर अवस्था मे प्रवेश करते हुए)—दुहाई है, महाराज, दुहाई है !

प्रसेनजित . (आश्वस्त करते हुए)—कहो, सावधान होकर कहो, तुम्हे किसने सताया है ?

प्रथम ग्रामीण महाराज ! अगुलिमाल ने मेरे घर को जला दिया है ! मेरे-पॉच वर्ष के शिशु को हाय मेरा बच्चा ! (गिर जाता है)

द्वितीय ग्रामीण . बचाइये महाराज ! वह मेरी स्त्री को न जाने कहॉ ले गया ! हाय ! हमारी लज्जा लूट ली । (रुदन)

प्रसेनजित . बन्धुओ ! दु.खी मत होओ । मै अगुलिमाल को कठोर दण्ड दूँगा । तुम्हारी उचित व्यवस्था की जायगी । जाओ, अव तुम्हे कोई नही सताएगा ।

(ग्रामीणो का नतशिर प्रस्थान)

देखा मन्त्रिवर ! अगुलिमाल कितने भयकर अपराध कर रहा है और हम राजा होकर भी कुछ नही कर पा रहे ।

(महाबलाधिकृत मणिभद्र का कम्पित दशा मे प्रवेश)

प्रसेनजित कहिए सेनापति जी ! इतनी व्याकुलता क्यो है ?

मणिभद्र . (नि:श्वास छोडकर)—राजन् ! अगुलिमाल ने राज्य की आधी से अधिक सेना का विध्वस कर दिया । शेष सेना भागकर कठिनता से अपने प्राण बचा पाई है ।

प्रसेनजित (रोष से)—तो तुम मेरे पास अपनी वीरता का राग अलापने आए हो ? लज्जा भी नही आई तुम्हे, इस प्रकार भागते हुए ? क्या तुम ससार मे अमर होकर रहोगे ? कायर ! चले जाओ मेरे सामने से !

मणिभद्र . महाराज ! अगुलिमाल साधारण साहसिक नही है। उसमे महान् शक्ति है, उसके आयुध अजेय है, उसकी हुकार वज्र-घोष जैसी है, उसकी गति मे विद्युत् की चपलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वह अनेक रूपो मे युद्ध कर रहा है। जिधर देखता हूँ, वही दिखाई देता है।

प्रसेनजित यही तुम्हारी कायरता है, हृदय की हीनता है, साहस का अभाव है और है प्राणो को बचाने का निरर्थक तर्क। वीर मृत्यु का भी हँसकर आलिगन करते है, मणिभद्र ! फिर अगुलिमाल तो मनुष्य ही है।

मणिभद्र (आकुलता से)—मै मृत्यु से नही डरता, महाराज ! मृत्यु से नही डरता। मै डरता हूँ अगुलिमाल की चमचमाती हुई कृपाण से। देखिये, वह आई ! बचाइये ! भाई अगुलि-माल ! मै अब नही आऊँगा तुम्हारे सामने ! छोड दो मुझे, अब नही आऊँगा।

(विक्षिप्तता का नाटक करते हुए पलायन)

दौवारिक (अभिवादनपूर्वक प्रवेश करते हुए)—महाराज की जय हो ! महात्मा गौतम पधार रहे हैं।

प्रसेनजित सम्मान के साथ उन्हे ले आओ !

गौतम (प्रवेश करते हुए)—सघ सरण गच्छामि ! धम्म सरण गच्छामि !! राजन् ! आप किस पर कुपित हो रहे है ? नेत्रो मे यह रक्तिमा क्यो है ?

प्रसेनजित (अभिवादनपूर्वक सिहासन से उठते हुए)—यह सम्बोधन अब न करिये, भगवन् ! मै अब इस सम्बोधन के योग्य नही हूँ। मै इस पवित्र सिहासन का कलक हूँ। मगध का सम्राट् कहलाने मे मुझे लज्जा आती है, महात्मन् !

गौतम . इतने दुखी क्यो होते है, राजन् ! आपकी कीर्ति तो समस्त उत्तरापथ मे गाई जाती है। आपके सुशासन का

प्रजा हृदय से अभिनन्दन करती है।

प्रसेनजित . (व्यंग्य से)—अवश्य करती होगी महात्मन्! क्योकि मैने उसे सुख और शान्ति की उन्मुक्त पवन जो दी है! साहसिक अगुलिमाल का दमन जो कर दिया है और कर दिया है उसे उसके भय से मुक्त!

गौतम · (मुस्कराते हुए)—तो आप अगुलिमाल के कारण इतने चिन्तित है? श्रेष्ठ नृप! तप्त लौह तो अग्नि मे तपाने से और भी अधिक तपने लगता है। अग्नि घृत की आहुति से और भी तीव्रता से प्रज्वलित होने लगती है। शक्ति शक्ति के प्रयोग से और भी बलवती होती है। उसके लिए चाहिए शीतल जल, उसके लिए चाहिए शान्ति एव शीलमय नम्र व्यवहार। हिसा का सामना अहिसा कर सकती है, नृपेश, हिसा नही!

प्रसेनजित जो व्यक्ति कोमल, निरीह शिशुओ पर अत्याचार कर सकता है, जो बेचारी अबलाओ पर हाथ उठा सकता है, जिसके कानो से अनाथो का क्रन्दन नही टकराता है, जो पाषाण-हृदय है, वह शान्ति और अहिसा के उपदेशो को सुनने का अवकाश कैसे पा सकता है?

गौतम पवित्र हृदय और विशुद्ध आत्मा जब निर्भय होकर हिस्र जन्तु को भी अपना मित्र बना सकती है, फिर वह तो मनुष्य ही है। केवल उसमे छिपे दानव का दर्शन-मात्र उसे कराना है। आप निश्चिन्त रहिए। मै उसे आपके समक्ष उपस्थित करूँगा।

प्रसेनजित नही, महात्मन्! मै आपकी हत्या का कलक अपने सिर नही लेना चाहता। वह हिस्र जन्तु से भी भयानक है। आप न जाइए।

गौतम . गौतम को प्राणो का मोह नही है, राजन्! यदि इस

शरीर की हत्या करके भी वह सुधर गया तो मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। किन्तु मेरा विश्वास है, उसमे इतना साहस नही कि वह एक सन्यासी पर हाथ उठा सके।

प्रसेनजित आप अकेले न जायँ, महाराज! मै आपकी सुरक्षा के लिए अपनी विशाल वाहिनी का प्रबन्ध कर दूँ।

गौतम इसकी आवश्यकता होती है नरेशो को। तपस्वी की आत्मा ही उसकी रक्षिका है, शान्ति ही उसका कवच है और अहिंसा है तीखा अस्त्र। आप चिन्ता न करे, राजन्! मैं रक्षित हूँ। (प्रस्थान)

(पट-परिवर्त्तन)

द्वितीय दृश्य

वन-प्रदेश

[अंगुलिमाल : लम्बी काया, विशाल अंग, नेत्रो मे रक्तिमा, गर्वमय भंगिमा, आतंकपूर्ण मुद्रा, सैनिक वेश, कटि मे कृपाण ; टहलता हुआ किसी की प्रतीक्षा मे]

अंगुलिमाल सेनापति मणिभद्र भाग गया मेरे भय से ! अह ह - ह ह ! मगध की राज्य-शक्ति अब मेरा कुछ नही बिगाड सकती। सम्राट् प्रसेनजित मेरे कारण शान्ति से सो नही सकते। मगध का जन-जन मेरे नाम को सुनकर काँपता है। मेरा ही साम्राज्य है अब तो मगध पर। चाहे जहाँ उन्मुक्त होकर विचरण कर सकता हूँ। देखता हूँ, अब प्रसेनजित का कौन-सा दाँव चलता है ? अगुलिमाल उस धातु का बना है, जिसको काटने के लिए किसी शस्त्र का आविष्कार हुआ ही नही। मगध की स्वल्प सेना मेरा क्या कर सकती है ? जिस दिन मै राज्य-प्रासाद पर आक्रमण करूँगा, उस दिन प्रसेनजित को ज्ञात होगा कि मै क्या हूँ (कुछ क्षण बाद) अरे, भणक अभी नही आया ? कहाँ रह गया ? ज्ञात तो होती प्रसेनजित की अगली योजना ! देखता वह कि मै उसे कैसे विफल करता हूँ !

(गुप्तचर का प्रवेश)

आओ भणक ! तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी। कहो, पाटलिपुत्र

के क्या समाचार है ?

भणक इस वार महात्मा गौतम बुद्ध आपको पकडने आ रहे है।

अंगुलिमाल वह ढोगी, जिसने अनेक युवको को अकर्मण्य और भिखारी बना दिया है ? वह पाखडी, जो अहिसा का उपदेश देकर कायरता का प्रचार कर रहा है ? वह मुझे पकड़ने आ रहा है ? क्या मेरे ही हाथो वह अपना प्राणान्त चाहता है ?

भणक . ढोगी और पाखडी न कहिए उन्हे, महाराज ! मैने उन्हे देखा है। उनमे अपूर्व तेज और अद्‌भुत आकर्षण है। उन्हे देखकर ऐसा लगता है कि उनके चरणो मे मस्तक रख दूँ।

अंगुलिमाल (आक्रोश से)—कैसी कायरता की वाते करते हो भणक ! इससे तो अच्छा था, तुम मेरे गुप्तचर न होकर किसी की स्त्री होते। वीर पुरुष कभी तीर-तलवार से भी विचलित नही होते, वह तो एक साधारण साधु है।

भणक . साधारण साधु नही, महाराज ! देखिए, वे इधर ही आ रहे है।

अंगुलिमाल . (देखते हुए)—अरे ! यही है वह पाखडी ? देखता हूँ ! (कुछ काँपता हुआ) पर यह क्या ? मेरे हृदय मे यह हलचल कैसी ? अरे, मै उसकी ओर आकर्पित क्यों हो रहा हूँ ? (क्रोध से) भणक ! हट जा मेरे सामने से ! तूने मुझे शक्तिहीन बना दिया है। हट जा ! (भणक का गमन) अरे पाखडी साधु ! कहाँ वढा आ रहा है मरने के लिए ? भाग जा यहाँ से अपने प्राणो को लेकर !

गौतम (आगे बढते हुए)—मै मरने के लिए नही आ रहा हूँ अगुलि ! मै मरते हुए को वचाने आ रहा हूँ, मैं सोए हुए

को जगाने आ रहा हूँ, मैं पथभ्रष्ट को पथ दिखाने आ रहा हूँ, मै दानव को मानव वनाने आ रहा हूँ, मै दुर्गन्ध-युक्त नाले को निर्मल जल की धारा वनाने आ रहा हूँ, मै तुम्हे वचाने आ रहा हूँ।

अंगुलिमाल (सकम्प, फिर भी साहस से)—तू मुझे उपदेश देने आ रहा है, पाखडी, नीच, धूर्त, कपटी ! मैं नही सुनना चाहता तेरी कायरता की वाते। भाग जा, नही तो इसी कृपाण से तेरा शीश छिन्न करके रख दूँगा ! (कृपाण खींच लेता है)

गौतम यह कृपाण वीरता का चिह्न नही है, अगुलि ! कोमल कमल-से वच्चो पर चलने वाली कृपाण, नि.शस्त्र जनता पर चलने वाली कृपाण, दीनो का खून वहाने वाली कृपाण, शान्ति मे ज्वार वनकर चलने वाली कृपाण, वीरता का चिह्न नही है, वल्कि कायरता की प्रतीक है। ऐसी कृपाण निर्भय और शान्त तपस्वी पर चलने का साहस नही कर सकती।

अंगुलिमाल : (गर्जन के साथ)—खडा रह दुष्ट ! भाग क्यो रहा है मेरी कृपाण देखकर ? खडा रह ! देखता हूँ, कैसे उपदेश देता है !

गौतम · यह तुम क्या कह रहे हो ? मै तो अपने स्थान पर अडिग हूँ, अगुलि ! तुम अपने नेत्रो से हिसा, अनाचार, दम्भ, अभिमान और स्वार्थ की कालिमा हटाकर देखो। तुम्हे तुम्हारे कृत्यों ने अधा वना दिया है, इसी से तुम्हे खडा हुआ व्यक्ति भी भागता हुआ दिखाई देता है।

अंगुलिमाल . (पीछे हटता हुआ)—यह क्या कर रहे हो ? सन्यासी ! क्या तुम सचमुच नही भाग रहे ? क्या तुम सचमुच

मेरे भय से नही काँप रहे हो ?

गौतम मै तो शान्त, स्थिर अपने स्थान पर हूँ। तुम्हारी आत्मा का कलुष ही मुझे देखकर भाग रहा है, और तुम्हे दिखाई देता है कि मै भाग रहा हूँ। तुम्हारी काया पापो, अन्याचारो तथा जघन्य कृत्यो के कारण मुझे देखते ही काँप रही है और तुम्हे लगता है, मै काँप रहा हूँ। तुम्हारी आत्मा तुम्हारे निम्न कर्मो से कायर हो गई है न, इसी से तुम्हे सभी कायर दिखाई देते है। सँभालो, अपने हाथ की कृपाण सँभालो ! देखो, वह गिरी !

(कृपाण उसके हाथ से गिर जाती है)

बोलो अगुलि, क्या इतना ही साहस था तुममे ? क्या ही अच्छा होता, यदि तुम अपनी शक्ति और अपने इस तन को दीनो की सेवा मे अर्पित करते ! तब देखते कि तुममे कितना बल है, तुम्हारे हृदय मे कितना सन्तोष है और तुम्हारी आत्मा मे कितनी निर्भयता है !

अगुलि (चरणो पर गिरकर)—महाराज ! क्षमा कीजिए। आपने आज मेरे नेत्र खोल दिए। मैने आपको कितने ही अपशब्द कहे है। मुझे क्षमा कीजिए। मै अपने पापो का प्रायश्चित्त चाहता हूँ।

गौतम अगुलि ! अनुताप की ज्वाला ही आत्मा-रूपी स्वर्ण के कल्मष को भस्म कर उसे कुन्दन की कान्ति दे सकती है। अपने को समझकर सत्पथ की ओर अग्रसर होना ही सच्चा प्रायश्चित्त है। तुम सत्य और अहिंसा को अपनाकर निर्विकार मन से दीनो की सेवा करो। ससार मे कल्याण का प्रसार करो, सघ की शरण मे जाओ।

तुम्हे तृप्ति मिलेगी, तुम्हे सन्तोप मिलेगा, तुम्हे शान्ति मिलेगी।

अंगुलि मैं आपका शिष्यत्व स्वीकार करता हूँ देव !

(चरणो मे नत होता है ; गौतम का वरद हस्त)

(पट-परिवर्तन)

तृतीय दृश्य

प्रसेनजित की राज्य-सभा

[सम्राट् प्रसेनजित सिंहासनासीन हैं। उनकी दाहिनी ओर आसन्दी पर मन्त्रिवर वक्रदन्त तथा बाईं ओर की आसन्दी पर महाबलाधिकृत मरिणभद्र आसीन हैं। अर्द्धचन्द्राकार वृत्त मे अन्य सामन्तगण बैठे है।]

प्रसेनजित जब से महात्मा गौतम गए है, कोई समाचार नही मिला। मुझे भय है, कही उस दुष्ट ने उनकी हत्या न कर दी हो!

वक्रदन्त राजन्! महात्मा गौतम का तो कोई समाचार नही मिला, किन्तु यह समाचार अवश्य मिला है कि जब से वे गए है, तब से राज्य मे अगुलिमाल के द्वारा किसी प्रकार का उपद्रव कही नही हुआ। सम्भव है, महात्मा गौतम ने उस पर विजय प्राप्त कर ली हो।

मणिभद्र असम्भव है, मन्त्रिवर! नितान्त असम्भव! जिसे राज्य की विशाल वाहिनी भी परास्त नही कर सकी, जो भयकर अस्त्र-शस्त्रो से भी विचलित नही हुआ, उसे शस्त्र-हीन भिक्षु कैसे वश मे कर सकता है?

प्रसेनजित मणिभद्र! मै गौतम के तेज को जानता हूँ। उनमे दैवी शक्ति है। कभी-कभी मन होता है, मैं भी बौद्ध हो

जाऊँ, किन्तु ब्राह्मण धर्म का दम्भ मुझे ऐसा करने से रोक देता है।

दौवारिक (प्रवेश करते हुए)—जय हो महाराज! महात्मा गौतम पधार रहे है।

प्रसेनजित उन्हे सम्मान-सहित ले आओ!

(दौवारिक का प्रस्थान। गौतम का 'सघ सरण गच्छामि, धम्म सरण गच्छामि' कहते हुए बौद्ध-वेषधारी अगुलिमाल सहित प्रवेश)

प्रसेनजित (सिहासन से उठते हुए)—आइए महात्मन्! विराजिए! कहिए, अगुलिमाल का क्या समाचार है?

गौतम देखिए नरेश! यह नवीन भिक्षु कौन है? पहचानिये इसे! यह वही अगुलिमाल है। किन्तु आज यह अगुलिमाल नही, केवल अगुलि है और पक्का बौद्ध है।

प्रसेनजित (साश्चर्य)—अगुलिमाल और बौद्ध? क्या मै स्वप्न देख रहा हूँ?

अंगुलि नही राजन्! आप सत्य देख रहे है। अब तक मै पथभ्रष्ट था। पूज्य तथागत ने मुझे पथ का प्रकाश दिखा दिया। अब मुझे शान्ति है, सन्तोष है और सुख है।

(समस्त सभासद गौतम बुद्ध का जयघोष करते है)

प्रसेनजित बुद्ध सरण गच्छामि!

गौतम सघ सरण गच्छामि!

सब जन बुद्ध सरण गच्छामि!
सघ सरण गच्छामि!
धम्म सरण गच्छामि!

पटाक्षेप

माँ का दूध

पात्र

जसवन्तसिंह	. जोधपुर-नरेश
महारानी	जसवन्तसिंह की पत्नी
राजमाता	जसवन्तसिंह की माँ
जया	. दासी तथा सखी

जोधपुर दुर्ग का राजप्रासाद

[महारानी का कक्ष—चित्रित दीवारें; खिडकियो पर रेशमी पर्दे। दीवारो पर प्राकृतिक दृश्यो तथा वीरो के कुछ चित्र। सामने रत्न-जटित झालर से युक्त रेशमी आस्तरण से सज्जित आसन्दी। राजसी वस्त्रो से सुसज्जित गौरवर्णा ओजस्विता की प्रतिमा महारानी चिन्तित मुद्रा मे आसन्दी पर आसीन है, नीचे को मुख किए सोचने मे लीन है।]

जया (प्रवेश करते हुए)—महारानी! आज आप उदास क्यो है? क्या महाराज की याद सता रही है?

महारानी नही जया! याद तो नही सता रही, लेकिन आज मेरे दाहिने अग फडक रहे है और सपना भी बुरा देखा है।

जया सपना बुरा देखा है और दाहिने अग भी फडक रहे है? फिर तो राजपुरोहित बुलाकर कुछ उपाय कराना चाहिये। सारे अनिष्ट समाप्त हो जाएँगे भगवान् की कृपा से।

महारानी नही जया! पुरोहित कुछ नही कर पायेगे। जो कुछ होना होगा, होगा। पर आश्चर्य है, ऐसा क्यो हो रहा है?

जया घबराइए नही महारानी जी! वीर नारियो को इस प्रकार चिन्ता करना शोभा नही देता। महाराज अवश्य विजयी होगे और यदि कही कुछ हो भी गया, तो आप राजपूत नारी है।

महारानी कही कुछ हो गया हो, तो दाहिने अग नही फडकते।

जब राजपूत नारी का पति युद्ध मे वीरगति प्राप्त करता है, तो उसके बाये अग फडकते है। वह तो उसके जीवन का पर्व होता है, जया ! पति की अनुगामिनी बनने का सौभाग्य मिलता है उसे।

जया तो फिर और क्या हो सकता है महारानी जी ?

महारानी यही तो सोचती हूँ। कुछ समझ मे नही आता। युद्ध का जब समाचार आया, तो मेरी आँखो मे आँसू आ गये थे। उन्होने कहा, 'रोती हो, जसवन्तसिह की रानी होकर ? यह तो तुम्हारे सौभाग्य का अवसर है। वीर-पत्नी होने का गौरव मिलेगा तुम्हे।'

जया फिर आपने क्या कहा ?

महारानी मैने कहा, 'महाराज ! ये आँसू भय और विषाद के नही है। जीवन मे मै कभी अलग नही रही, इसीलिए मेरी आँखो मे आँसू आ गये। मै आपकी अर्द्धांगिनी हूँ। क्या यह उचित है कि अर्द्धांग युद्ध मे जाये और अर्द्धांग राजप्रासाद मे सुख की सेज पर रहे ?'

जया फिर ?

महारानी फिर मुझे हृदय से लगाते हुए बोले, 'यह कैसे सोचती हो प्रिये, कि अर्द्धांग ही युद्ध मे जा रहा है ? तुम सदा मेरे हृदय मे निवास करती हो। तुम मेरे हृदय का स्पन्दन हो। क्या स्पन्दन के बिना जीवन सम्भव है ?'

जया इस पर आपने क्या कहा ?

महारानी मैने इसे अपना सौभाग्य मानते हुए युद्ध मे चलने का विनत आग्रह किया।

जया : और वह आग्रह महाराज ने स्वीकार नही होगा किया।

महारानी हाँ, जया ! उन्होने प्यार से कहा, 'तुम्हारा कोमल

हृदय युद्ध की भयकरता सहन नही कर सकेगा। जो प्यार के लिए वना है, उसमे विरोध के भाव कैसे आ सकेगे ?'

जया और आपने यह स्वीकार कर लिया ?

महारानी नही, जया! मैने कहा, 'वीर नारी अवसर पर दुर्गा भी वन जाती है स्वामी! महारानी कैकेयी ने क्या महाराज दशरथ का साथ नही दिया था ? पति का प्रेम उसे शत्रु के प्राणो का ग्राहक वना देता है, देव!'

जया फिर ?

महारानी फिर, उल्लास के साथ मुझे आलिगनबद्ध करते हुए वोले, 'तुम्हारी यह भावना ही मेरी शक्ति है। वस, मुस्कराते हुए अव मुझे विदा कर दो। उसी एक मुस्कान से उत्साहित होकर मैं शत्रु को यमराज का अतिथि वना दूंगा। तुम्हारे साथ रहने से तो मुझे निरन्तर तुम्हारा ही ध्यान रहेगा और मैं निश्चिन्त होकर शत्रु से लड भी नही पाऊँगा।'

जया फिर ?

महारानी फिर मैने स्वय अपने हाथो से उन्हे वीर-वेश मे सज्जित किया, आरती उतारी और प्रसन्नता से रण-भूमि के लिए विदा किया। फिर पता नही मन की स्थिति ऐसी क्यो हो गई है ?

जया जव प्रेम अधिक होता है महारानी जी, तव कभी-कभी ऐसा ही होता है। व्यर्थ की शकाएँ मन को घेर लेती है। ईश्वर सव मगल करेगा।

महारानी उस परम पिता का तो विश्वास ही है, जया!

(नेपथ्य मे दूर कोलाहल की ध्वनि)

महारानी देख तो जया, यह कोलाहल कैसा है ?

(जया का प्रस्थान)

महारानी यह कोलाहल कैसा है ? क्या स्वामी विजय प्राप्त कर लौट रहे है ? किन्तु तव तो जय-जयकार होनी चाहिए, रणवाद्यो का निर्घोष होना चाहिए ! यह भगदड की-सी ध्वनि कैसी ? क्या शत्रु-सेना विजयी हो गई ? क्या स्वामी ने वीर-गति प्राप्त की ? तो क्या मै भी अपने को जौहर के लिए प्रस्तुत करूँ ?· ·लेकिन यदि शत्रु-सेना आती, तो उसकी ध्वनि मे भी तो उल्लास व्यक्त होना चाहिए ! यह ध्वनि तो भयाक्रान्तो जैसी है ।

जया · (द्रुतगति से प्रवेश करते हुए)—महारानी जी ! वडा दु खद सवाद है । महाराज युद्ध-भूमि से भागकर आ रहे है । हमारे सैनिक भयभीत होकर भागे आ रहे हैं, इसी का कोलाहल है यह !

महारानी (सम्भ्रम के साथ आसन्दी से उठती हुई साश्चर्य)—क्या ? महाराज भागकर आ रहे है ? क्या कह रही है यह ? क्या सूर्य पश्चिम मे उगना चाहता है ? क्या गगा हिमालय की ओर वहना चाहती है ? क्या चन्द्रमा अगारे उगलना चाहता है ?

जया नही महारानी ! मैं ठीक कह रही हूँ । एक सैनिक यही सन्देश लाया है ।

महारानी (आक्रोश के साथ)—यदि ऐसा है, तो दुर्ग का द्वार तुरन्त वन्द करा दे ! मै ऐसे कायर पति का मुख भी नही देखना चाहती । वे आएँ, इससे पूर्व मै पृथ्वी मे समा जाना चाहूँगी । जया, इस समय दुर्ग की स्वामिनी मै हूँ । द्वार-रक्षको से कह दे, वे दुर्ग का द्वार वन्द कर दे !

जया महारानी जी, वे आपके पति है । उनका ऐसा निरादर उचित नही । इस समय उन्हे सान्त्वना और विश्राम की

आवश्यकता है ।

महारानी यह मेरा दुर्भाग्य है जया, कि मै ऐसे कायर पुरुष की पत्नी हुई । मैने तो उन्हे पहले ही कहा था कि युद्ध मे मै भी चलूँगी । तव देखते मेरा जौहर ! जा, खडी न रह । शीघ्र द्वार वन्द करा दे दुर्ग का । क्षत्रिय शब्द को कलकित किया है उन्होने आज । यह वीरो का दुर्ग है, कायरो का नही ।

राजमाता (प्रवेश करती हुई)—क्या हुआ वहूरानी ! किसके लिए दुर्ग का द्वार वन्द करा रही हो ?

महारानी (रुआँसे स्वर मे)—माँ ! आज आपके स्तन्य की लाज डुवोई है मेरे स्वामी ने । अव क्या करूँ ! वे आज रण से पीठ देकर आ रहे है ।

राजमाता (साश्चर्य)—तू सपना तो नही देख रही, वहूरानी ? ऐसा भी हो सकता है कि मेरा लाल युद्ध से भाग आये ?

महारानी हाँ, माँ ! जया यही सन्देश लाई है । आप उधर खिडकी से सुनिए, भागने वालो का कोलाहल वढता ही आ रहा है ।

(नेपथ्य मे कोलाहल-ध्वनि)

जया महारानी ठीक कहती है, रानी माँ ! महाराज भागकर आ रहे हैं ।

राजमाता (सक्रोध) --यदि ऐसा है, तो करा दे दुर्ग का द्वार शीघ्र वन्द । मै भी ऐसे पुत्र का मुख नही देखना चाहती । (दो क्षण रुककर) नही-नही, दुर्ग का द्वार वन्द नही होगा । आने दे मेरे लाल को ।

महारानी माँ, आप यह क्या कह रही है ?-क्या कायर पुत्र को आप अपने अक मे स्थान देगी ?

राजमाता हाँ वहूरानी ! वह कायर है तो क्या ? अन्तत मेरा

पुत्र है !

महारानी क्या ऐसे पुत्र को भी अपना पुत्र कहेगी, माँ ?

राजमाता हाँ बहू, माँ की ममता ऐसी ही होती है।

महारानी ममता ? यह तो ममता का दुरुपयोग है, माँ ! यह ममता पतन की ओर ले जाने वाली है। छोडिये इस ममता को। कायर व्यक्ति न किसी का पुत्र है और न किसी का पति।

राजमाता पति हो या न हो, पुत्र तो माँ का हर दशा मे है।

महारानी तो माँ, मेरे लिए ज्वाला तैयार कराइये। मैं उनका मुख देखने से पूर्व ही अग्नि-देवता की शरण मे चली जाऊँगी।

राजमाता ऐसा नही कहते, बहूरानी ! जब तुम्हारा पुत्र होगा, तब तुम्हे पता चलेगा, माँ की ममता कैसी होती है।

महारानी ऐसे पुत्र से तो मै वन्ध्या होना ठीक समझूँगी। यदि मेरा पुत्र ऐसा होगा, तो विष खाकर सो रहूँगी।

राजमाता आने दो समय। भगवान् करे, मै भी देखूँ तुम्हारे हृदय मे ममता उमडती है या नही।

महारानी क्षमा कीजिए, धृष्ट बन रही हूँ। मेरा पुत्र ऐसा न होगा।

राजमाता अच्छा, जैसा भी हो। मेरा पुत्र थककर आ रहा है। आज उसके लिए तुम स्वय हलवा तैयार करो।

महारानी (आश्चर्य एव रोष से)—मै ? मै हलवा तैयार करूँ ऐसे कायर के लिए ?

राजमाता (अधिकार के स्वर मे)—हाँ, तुम्हे ही हलवा तयार करना होगा ! मेरी आज्ञा है। देखो, लगता है जैसे वह आ रहा है।

महारानी (मन्द एव करुण स्वर मे)—आज्ञा ?·· आज्ञा तो

माननी होगी। मुझे तो अपनी मर्यादा मे रहना ही होगा। चल जया, चल। कर्त्तव्य वडा दुर्वह है।

(एक ओर से जया के साथ महारानी का प्रस्थान, दूसरी ओर से अस्तव्यस्त दशा मे जसवन्तसिह का प्रवेश)

राजमाता क्या हुआ बेटा ! ऐसे व्यग्र क्यो हो ?

जसवन्तसिह (व्यग्रतापूर्वक)—माँ ! वडा भयकर युद्ध है। शत्रु पीछा करता हुआ आ रहा है।

राजमाता (व्यग्य से)—भयकर युद्ध है ? सचमुच भयकर युद्ध है। कहाँ फूलो की सेज पर सोने वाला मेरा लाल और कहाँ भयकर युद्ध ! देखूँ, कही चोट तो नही आई ?

जसवन्तसिह नही, चोट तो नही आई, माँ ! लेकिन शत्रु की तोपे आग उगल रही थी, माँ !

राजमाता (व्यंग्य से)—आग उगल रही थी ? फूल वरसाने चाहिए थे उन्हे। मेरा बेटा क्या जानता था कि तोपे आग उगलती है ! नही तो क्यो जाता युद्ध मे !

जसवन्तसिह व्यग्य न करो, माँ ! तुम होती तो देखती।

राजमाता हाँ, सचमुच मै वडी कठोर हूँ। अकेला भेज दिया वेटे को काल के गाल मे ! अभी अवस्था ही क्या है तेरी ! यौवन क्या लडने के लिए होता है ? यही तो दिन है रगरेलियो के ! और अभी आ गया युद्ध, सोचा भी नही उसने !

जसवन्तसिह क्या कह रही हो, माँ ?

राजमाता ठीक ही तो कह रही हूँ। मेरे लाडले का उपवन-क्रीडा का समय था यह। अट्टालिका मे सुख की नीद सोने का समय था यह। इस समय कही युद्ध किया जाता है ?

जसवन्तसिह . माँ, कैसा हृदय है तुम्हारा ? यदि मेरी मृत्यु

हो जाती, तो तुम्हारा और तुम्हारी वहू का क्या होता ?

राजमाता अरे ! यह तो सोचा ही नही मैने। मुझे क्या ज्ञात था कि मेरा पुत्र भगवान् का अवतार होकर जन्मा है! मुझे और वहू को अमरौती खिलाने लाया है! मै तो जानती थी कि पचभूत का यह शरीर एक दिन पचभूतो मे ही मिल जायगा। मै नही जानती थी कि मेरा पुत्र मुझे अमर कर देगा!

जसवन्तसिह माँ, तेरी वाणी तो आज शत्रु की गोलियो से भी तीखी हो गई है। क्या हो गया है तुझे ?

राजमाता राम-राम ! क्या कह रहा है यह ? माँ की वाणी और शत्रु की गोलियो से तीखी ? नही कहूँगी अव कुछ। बाते कडवी लगती है तो तुझे अव मधुर पदार्थ खिलाऊँगी।

(नेपथ्य मे कडाही मे करछुल की ध्वनि)

राजमाता (उच्च स्वर मे)—वहूरानी, यह क्या कर रही हो ?

महारानी (नेपथ्य से)—आपकी आज्ञा का पालन कर रही हूँ। आपके वीर सपूत के लिए हलवा वना रही हूँ। क्या पालना सजाऊँ ?

जसवन्तसिह (चौकते हुए)—है ! इधर से भी व्यग्य ?

राजमाता (उच्च स्वर से)—क्या मैने ऐसे हलवा वनाने को कहा था ? मेरा लाल युद्ध-भूमि मे लोहे से लोहा वजते देखकर तो मेरे अक मे स्थान लेने आया है ! अव तू भी वहा लोहे से लोहा वजाने लगी ? क्या उसको यहाँ भी नही रहने देना चाहती ?

जसवन्तसिह . माँ, क्षमा करो। मै पुन युद्ध को जा रहा हूँ।

राजमाता नही वेटा, युद्ध वडा भयकर है, शत्रु की तोपे आग उगल रही है। यदि तुम नही रहे, तो हमारा क्या होगा ?

अग्नि भी तो नही जला सकेगी हमे ! जौहर की ज्वाला भी शीतल हो जाएगी, बेटा ! यह मानव-शरीर बडी कठिनता से मिलता है। क्या यह इस प्रकार नष्ट कर देने के लिए है ?

जसवन्तसिंह (आवेश से)—माँ, अब नही सहा जाता।

राजमाता (क्रोध से)—नही सहा जाता तो कायरता से भागकर मुँह दिखाने मे लज्जा नही आई ? मेरे दूध को लजाने मे सकोच नही हुआ ? राजपूती आन को मिटाकर, वहू के वलय को कलकित करके घर घुसना सुहाया तुम्हे ? अब कहते हो, माँ सहा नही जाता ?

जसवन्तसिंह बहुत हो चुका, माँ ! अब अधिक लज्जित न करो ! तुम्हारा बेटा अब या तो अपने प्राणो का वलिदान कर देगा या विजय की श्री चढाएगा तुम्हारे चरणो पर।

राजमाता उस दिन घी के दीपक जलाऊँगी राजभवन मे, स्वर्ण-मुद्राएँ लुटाऊँगी, कुलदेवता की आरती उतारूँगी, आज की कालिमा को धोऊँगी जी भरकर।

जसवन्तसिंह अच्छा माँ ! प्रणाम ! विदा !

(एक ओर से जसवन्तसिंह का तीव्र गति से प्रस्थान, दूसरी ओर से हलवे का थाल लेकर महारानी का प्रवेश)

महारानी (प्रवेश करते हुए)—माँ, हलवा प्रस्तुत है। (इधर-उधर देखकर) हैं ? कहाँ गये वे ?

राजमाता रणभूमि मे।

महारानी रणभूमि मे ? कैसे चले गए रणभूमि मे ?

राजमाता तुम यही तो चाहती थी न ? कायर पति का मुख तुम नही देखना चाहती था न ? अब तुम्हारा पति विजयी होकर ही लौटेगा।

महारानी यह क्या रहस्य है, माँ ? कुछ समझ मे नही आता ।

राजमाता यह रहस्य तुम अभी नही समझोगी । समय अपने-आप समझा देगा । दुर्ग का द्वार वन्द कराने से विजय न मिलती तुम्हारे पति को । उस दशा मे वह आत्महत्या भी कर सकता था ।

महारानी लेकिन यह क्या हुआ, माँ ? फिर क्या वे भागकर नही आए थे ?

राजमाता भागकर ही आया था वह, पर उसमे उसका कुछ अपराध नही था । वह अपराध तो मेरा था ।

महारानी (साश्चर्य)—आपका था ? सो कैसे माँ ?

राजमाता वहूरानी ! राजपूत-नारी का दूध ही वीरता से भरा होता है ।

महारानी (उत्सुकता से)—फिर यह क्या हुआ ?

राजमाता वही तो वताती हूँ । जव यह छोटा था, तो एक दिन भूख से रोने लगा । मै कुछ व्यस्त थी । इतने मे दासी ने आकर इसे अपना दूध पिला दिया । उसी का प्रभाव था यह, जो इस रूप मे प्रकट हुआ ।

महारानी उस दूध का ऐसा प्रभाव ?

राजमाता हाँ, उसी दूध का प्रभाव था यह ।

महारानी तो क्या दासी अपने से निम्न थी इसलिये ? लेकिन पन्ना धाय ने भी तो उदयसिंह को अपना दूध पिलाया था । दूध मे भी इतनी भिन्नता ?

राजमाता पन्ना को मातृत्व का गौरव प्राप्त था, वहूरानी ! फिर निम्न और उच्च का भी प्रश्न नही है । सभी मे वही परमात्मा समान रूप से विद्यमान है । सभी एक है ?

महारानी तो फिर उस दूध का यह प्रभाव कैसे ?

राजमाता निरन्तर पराधीनता मे जीवन बिताने वाली दासी के रोम-रोम मे हीनता की भावना भर गई थी, जो उसके दूध मे भी समा गई थी। इसी से उसका यह प्रभाव हुआ। अब तुम्हारा पति इस प्रभाव से मुक्त हो गया है। अब वह विजयी होकर ही लौटेगा। जाओ, प्रसन्न मुद्रा से पूर्ण श्रृङ्गार के साथ स्वागत करना अपने पति का।

महारानी जो आज्ञा। (प्रस्थान)

पटाक्षेप

गुरु-दक्षिणा

पात्र

आचार्य द्रोण	कौरव-पाण्डवो के गुरु
अर्जुन	आचार्य द्रोण का प्रिय शिष्य
भीम	अर्जुन से ज्येष्ठ
दुर्योधन	ज्येष्ठ कौरव
एकलव्य	निषादराज का पुत्र

युधिष्ठिर आदि पाण्डव,

दु शासन आदि कौरव,

श्वान

प्रथम दृश्य

आचार्य द्रोण का आश्रम

[विशाल आसन्दी पर मृग-चर्म ; पीत अधोवस्त्र धारण किए उस पर आचार्य द्रोण आसीन है ; विशाल मस्तक, श्वेत श्मश्रु एव श्वेत जटाएँ ; नग्न अग पर यज्ञोपवीत, तेजपूर्ण मुखमंडल, प्रसन्न मुद्रा। उनके समक्ष अर्द्ध-चन्द्राकार वृत्त मे उज्ज्वल आस्तरण पर युधिष्ठिर आदि पाण्डव तथा दुर्योधन आदि कौरव राजसी वेशभूषा में आसीन हैं। युधिष्ठिर शान्त एवं गंभीर ; भीम और दुर्योधन की मुद्रा कुछ औद्धत्य-पूर्ण ; अर्जुन गांडीव हाथ मे लिए लक्ष्य विद्ध करके साभिमान, उत्फुल्ल-वदन घुटनो के बल गुरु के समीप आसीन है। सामने कुछ दूरी पर वृक्ष की डाल पर शरबिद्ध विहग लटका हुआ है]

आचार्य द्रोण—(सोल्लास)—धन्य! वत्स अर्जुन, धन्य! आज तुम्हारी शिक्षा सफल हुई। तुमने लक्ष्य विद्ध करके अपनी धनुर्विद्या की कुशलता का परिचय दिया है। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। आज तुम्हारी प्रत्येक मनोकामना पूर्ण की जायगी। निस्सकोच कहो, क्या अभिलाषा है ?

अर्जुन. (प्रणत होकर)—गुरुदेव! यह आपकी वत्सलता और कृपा का ही परिणाम है। आपके चरणो की महिमा से ही यह सम्भव हो सका है। सेवक की क्या सामर्थ्य ? मेरी यही आकाक्षा है कि धनुर्वेद मे आपके इस शिष्य की समता

भूतल पर कोई न कर सके। ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

द्रोण (वरद हस्त उठाते हुए)—एवमस्तु! सच्ची निष्ठा, मनोयोग एव लगन से क्या सम्भव नही है? वत्स! यह अभिलाषा तुम्हारे ही योग्य है।

दुर्योधन आचार्यवर! क्या यह आपका पक्षपात नही है? आपके लिए तो सभी शिष्य समान है। फिर अकेले अर्जुन को यह वरदान कैसा?

द्रोण वत्स! मेरी शिक्षा सभी के लिए समान है। जिसके हृदय मे जितनी अधिक श्रद्धा, जिज्ञासा एव लगन होती है, वही अधिक दक्षता प्राप्त करता है। लक्ष्य की सिद्धि अपने को उसी मे केन्द्रित करने से होती है, सुयोधन! ईर्ष्या से नही।

दुर्योधन गुरुदेव! मै देख रहा हूँ. आपका स्नेह पाण्डवो पर अधिक है तथा अर्जुन पर तो और भी विशेष। क्या आप ··

भीम (बीच मे ही ईषत् क्रोध से)—दुर्योधन! शिष्टता सीखो। गुरुदेव पर पक्षपात का आरोप लगाकर तुम उनका अपमान कर रहे हो। यह मुझे सह्य नही होगा।

दुर्योधन (व्यग्य से)—हॉ, हाँ, तुम्हे क्यो सह्य होगा? तुम क्यो न ठकुरसुहाती कहोगे? गुरु की कृपा का अभिमान है न! लेकिन मै तो जो सत्य होगा वही कहूँगा। कटु लगता है तो कान वन्द कर लो।

भीम (रोप से)—जिस दिन मेरी वाहुओ मे वल नही रहेगा, गदा उठाने की शक्ति नही रहेगी, उस दिन कान स्वत ही वन्द हो जाएँगे। किन्तु जव तक मुझमे तुम्हारी वाणी मूक करने की क्षमता हे, तव तक ·

द्रोण (रोकते हुए आवेश के स्वर मे)—भीम ! उद्धत न बनो। शक्ति, साहस और वीरता का सौन्दर्य धैर्य एव सहनशीलता मे है। सुयोधन तुम्हारे लिए युधिष्ठिर के समान है। क्या मेरी शिक्षा का मूल्य इतना-सा ही है ?

(भीम सिर झुका लेता है)

(दुर्योधन से) वत्स सुयोधन ! भीम की बातो पर ध्यान न देना। वह अभी अज्ञान है। गुरु किसी शिष्य-विशेष से अतिरिक्त स्नेह नही करता। वह स्नेह करता है तो उसके सेवा भाव से, उसके परिश्रम से, उसके चातुर्य से, उसके वुद्धि-वैभव से और उसके अध्यवसाय से। मै अर्जुन से नही, उसके इन्ही गुणो से स्नेह करता हूँ। तुम भी उनका अर्जन करके मेरे वरदान के पात्र हो सकते हो।

(एकलव्य का प्रवेश—दीर्घकाय, श्याम वर्ण, वल्कल वसन, ओष्ठ पर मसि-रेखा, तेजस्वी रूप, स्कन्ध पर धनुष और दाहिने कर मे विशिख, कटि मे तूणीर।)

एकलव्य गुरुदेव, प्रणाम !

(सभी उसकी ओर देखते है)

द्रोण आयुष्मान भव ! कहो वत्स ! तुम्हारा परिचय और आश्रम मे आने का प्रयोजन ?

एकलव्य गुरुवर ! मै निषादराज का पुत्र एकलव्य हूँ और आचार्य की चरण-सेवा मे रहकर धनुर्विद्या सीखने की कामना से उपस्थित हुआ हूँ। कृपया मुझे अपनी शरण मे लीजिए।

द्रोण (वक्रिम भंगिमा से)—एकलव्य ! तुम जानते हो, यह आश्रम राजकुमारो का शिक्षालय है। द्रोण तो वश, कुल

और मर्यादा का विचार करके ही शिक्षा देता है। प्रत्येक व्यक्ति उसकी शिक्षा का पात्र नही हो सकता। जाओ, तुम्हे यहाँ स्थान नही मिल सकता।

एकलव्य अपराध क्षमा हो, आचार्यप्रवर ! पात्र का परिचय तो उसकी परीक्षा से ही हो सकता है। स्वर्ण सिकता-कणो से ही प्राप्त होता है, सुधा की उत्पत्ति क्षार-सिन्धु से ही हुई है, पकज पक मे ही विकसित होता है, गुरुदेव ! यह अकिचन भी अपनी पात्रता की परीक्षा देना चाहता है।

द्रोण यह तुम्हारी प्रगलभता है, निषाद-पुत्र ! जिसको तुम गुरु समझते हो, उससे विवाद करते हुए तुम्हे लज्जा नही आती ? जाओ, तुम्हे इस शिक्षालय मे स्थान नही मिलेगा।

एकलव्य (विनम्रता से) –विवाद करने की धृष्टता नही करता यह सेवक। केवल विनम्र निवेदन ही करता हूँ। क्या निपाद-कुल मे जन्म लेना ही मेरा अपराध हो गया ? क्या मेरी श्रद्धा का कोई मूल्य नही ?

द्रोण (क्रोध से)—मैं अधिक नही सुनना चाहता। कह दिया, इस शिक्षालय मे तुम्हे स्थान नही मिलेगा, नही मिलेगा !

एकलव्य किन्तु गुरुदेव, मै तो कृत-सकल्प होकर आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ। मेरी आत्मा और मेरा रोम-रोम पुकारकर कह रहा है, आचार्य द्रोण मेरे गुरु है। अपनाइए दयावतार, अपनाइए ! (करुणा के साथ चरणो मे विनत होता है)

द्रोण (पीछे हटते हुए)—एकलव्य ! तुम्हारा दुराग्रह सीमोल्लघन कर रहा है। अच्छा हो, अभिशाप से पूर्व यहाँ से चले जाओ। मै तुम्हे दीक्षा नही दे सकता। निपादो की भाँति

स्वत अभ्यास करो।

एकलव्य (प्रणाम करके) जो आज्ञा गुरुदेव!

(गजगति से प्रस्थान, सभी विस्मित से उसकी ओर देखते है)

(पट-परिवर्तन)

द्वितीय दृश्य

वन-प्रान्त

[आचार्य द्रोण की मृत्तिका-मूर्ति । एकलव्य अर्चना के अनन्तर प्रतिमा को प्रणाम करता है और फिर अपने शरासन पर शर-सधान कर दूर वृक्ष पर लटके हुए विहग-शावक के नेत्र को विद्ध कर देता है। 'गुरु द्रोण की जय' के साथ उल्लास से पुन प्रतिमा के सम्मुख प्रणत होता है और पहले की भाँति शर-सधान करके हिलते हुए विहग-शावक के द्वितीय नेत्र को विद्ध करना चाहता है कि नेपथ्य से एक श्वान के भौंकने की ध्वनि सुनाई देती है। एकलव्य प्रत्यचा शिथिल करके विशिख हाथ मे ले लेता है और श्वान की ओर उन्मुख हो जाता है]

एकलव्य मेरे अभ्यास मे व्याघात वनकर उपस्थित होने वाले श्वान ! आज तुम्हे भी असमय भौकने का दण्ड मिल जायगा और तुम्हारे स्वामी आखेटक को भी तुम्हारे द्वारा इस ओर न आने का सकेत मिल जायगा।

(तुरन्त ही तूणीर से कुछ विशिख निकालकर प्रत्यंचा पर चढ़ाकर छोड देता है)

लो, अब तुम नही भौक सकते। जाओ, अपने स्वामी से इन आविद्ध शरो को मुख से निकलवा लो।

(पुनः अभ्यास मे रत होता है)

(नेपथ्य से वार्तालाप सुनाई देता है)

दुर्योधन देखिए, गुरुदेव! देखिए! कितना आश्चर्य है? किसी के विशिखो से श्वान का मुख ऐसा भर गया है कि वह मूक हो गया है और रक्त की एक बूँद भी नही दिखाई देती। क्या आपका शिष्य अर्जुन ऐसा हस्तालाघव दिखा सकता है? आपने तो उसे ससार-शिरोमणि धनुर्धर होने का वरदान दिया था। अ ह ह ह!

अर्जुन गुरुदेव! वास्तव मे यह हस्तलाघव स्तुत्य है। मुझे अपनी धनुर्विद्या का अभिमान था, किन्तु देखता हूँ भूतल पर मुझसे भी कुशल धनुर्धर हैं। गुरुदेव! आपकी कृपा होते हुए भी मै भाई सुयोधन के उपहास का पात्र बन रहा हूँ।

द्रोण वत्स कौन्तेय! इस हस्तलाघव और शर-सचालन-कौशल को देखकर मै स्वय विस्मित हूँ। सुयोधन के व्यग से मेरा हृदय भी आहत हो गया है। मेरी मानसिक स्थिति सन्तुलित नही रही। जाओ, श्वान का अनुसरण करो और ज्ञात करो, वह धनुर्धर वीर कौन है और किसका शिष्य है?

(अर्जुन का श्वान के साथ प्रवेश)

अर्जुन तुम्हारे अभ्यास मे बाधक अर्जुन तुम्हे नमस्कार करता है।

एकलव्य—आओ बन्धु, स्वागत! किन्तु वन मे मै आपका क्या आतिथ्य करूँ? इस निषाद के पास राजकुमारो के योग्य कुछ भी तो नही।

अर्जुन—तुम्हारी मधुर वाणी ही हमारे आतिथ्य के लिए पर्याप्त है वीर! केवल यह ज्ञात करने आया हूँ कि हमारे श्वान का मुख विशिखो से क्या तुमने ही रुद्ध कर दिया था?

एकलव्य राजकुमार ! यह धृष्टता तो मेरी ही है। यदि मैं जानता कि यह श्वान आपका है, तो कदापि यह अपराध न होता। इसने यहाँ आकर मेरे अभ्यास में व्याघात उपस्थित किया, इससे मुझे कुछ रोष आ गया और मैं यह अपराध कर बैठा। क्षमा चाहता हूँ।

अर्जुन वीर युवक ! तुम्हारे इस हस्तलाघव को देखकर मैं मुग्ध हूँ। मुझे तुमसे स्पर्द्धा हो रही है। तुमने यह शर-संधान-कौशल किस गुरु की कृपा से प्राप्त किया है ?

एकलव्य (प्रतिमा की ओर इंगित करके)—राजकुमार ! जो आपके गुरु हैं, उन्हीं आचार्य द्रोण के शिष्य होने का गौरव मुझे भी प्राप्त है। देखिए, वे अब भी अपनी प्रसन्न-मुद्रा से मुझे शर-संधान के लिए प्रेरित कर रहे हैं। उनकी वाणी ने मेरे अन्तर को प्रकाशित किया है। इसी का परिणाम है कि मैं अलक्षित लक्ष्य को भी विद्ध करने में समर्थ हूँ।

(प्रतिमा की ओर करबद्ध सिर झुकाता है)

अर्जुन (सावेश)—आचार्य द्रोण का शिष्य ! आश्चर्य ! आचार्य का मुझसे भी छद्म ! क्या उस दिन की प्रसन्नता कृत्रिम थी ? क्या उस दिन का वरदान छलना मात्र थी ? आचार्य ! आचार्य !

(तीव्रता से प्रस्थान। एकलव्य एक क्षण उस ओर देखता रहता है, फिर प्रतिमा के समक्ष नत होता है। नेपथ्य से फिर वार्तालाप सुनाई देता है)

आचार्य ! मैं समझता था, विश्व में आपकी कृपा का पात्र मैं ही हूँ। किन्तु यह मेरा भ्रम था। आप भी मुझसे दुराव करते हैं। गुप्त रूप से अन्य शिष्यों को भी शस्त्र-

सचालन की शिक्षा देकर मुझसे भी अधिक लाघव और कौशल सिखाते है। श्वान को मूक करने वाला आपका ही कोई शिष्य है।

द्रोण · (साश्चर्य)—मेरा शिष्य ? असत्य है। चलो, देखता हूँ।

(अर्जुन और द्रोण का अन्य कौरव-पाण्डवो के साथ प्रवेश)

एकलव्य **(साष्टाग प्रणाम के अनन्तर)**—गुरुदेव ! आज मेरा जीवन सफल हुआ ! आपके शुभागमन से मेरा रोम-रोम हर्षित है। मै, आपका शिष्य एकलव्य अभिवन्दन करता हूँ।

द्रोण (साश्चर्य)—मेरा शिष्य ! **(प्रतिमा की ओर देखकर ससभ्रम)** क्या प्रतिमा-पूजन मात्र से मेरे शिष्य हो गए ? मै तो तुम्हे जानता भी नही।

एकलव्य **(बडे करुण स्वर मे)**—विस्मृत न करे गुरुदेव, इस अकिचन को। मै आपका शिष्य, निपादराज का पुत्र एकलव्य हूँ। आपके चरणो मे शिक्षा प्राप्त करने के हेतु उपस्थित हुआ था। उस समय आपने आश्रम को मेरे लिए अनुपयुक्त बताकर अभ्यास का आदेश दिया था। मै तभी से निरन्तर अभ्यास कर रहा हूँ। आपकी यह प्रतिमा मुझे आपकी वाणी का स्मरण दिलाती रहती है और मेरी प्रत्येक सफलता पर मुस्कराकर मेरे हृदय मे उत्साह और साहस का सचार करती रहती है। मै इसमे आपके दर्शन करता हूँ, देव !

द्रोण वत्स एकलव्य ! तुम्हारे अभ्यास, तुम्हारे अध्यवसाय, तुम्हारी लगन एव तुम्हारे पुरुषार्थ को देखकर मै मुग्ध हो गया हूँ। तुम जैसे ही वीर, जो अपने को जीवन के उद्देश्य मे निरत कर भूल जाते है, सफलता प्राप्त करते है। जिनमे

दम्भ एव अभिमान होता है, वे उसी मे चूर होकर अपने जीवन की व्यर्थता ही सिद्ध करते है। तुम्हारी लगन विश्व के लिए आदर्श होगी।

एकलव्य गुरुदेव ! आप मुझे व्यर्थ ही महत्त्व दे रहे है। यदि आपकी दया न होती, तो आपका यह शिष्य कुछ भी न कर पाता।

द्रोण वत्स एकलव्य ! तुम मुझे व्यर्थ गुरुत्व का गौरव प्रदान कर रहे हो। तुमने जो कुछ कौशल प्राप्त किया है, वह अपने उद्योग और परिश्रम से। मै अपने को तुम्हारा गुरु नही मान सकता।

एकलव्य (चरणो में झुककर)—ऐसा न कहिए आचार्यप्रवर ! यदि आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार न करेगे, तो मेरा यह सारा कौशल निष्फल हो जाएगा। मै अपने जीवन मे कुछ न कर सकूँगा।

द्रोण . (कुछ सोचकर)—एकलव्य ! केवल प्रतिमा-पूजन से ही शिष्य नही बना जाता। शिष्य का कर्तव्य बडा कठोर है। शिष्यत्व का दम भरना जितना सरल है, गुरु-दक्षिणा देना उतना ही कठिन है। अर्जुन मेरा शिष्य है, जिसने मेरे एक सकेत पर पाचाल-नरेश को बाँधकर मेरे चरणो मे डाल दिया था।

एकलव्य आज्ञा कीजिये, गुरुदेव ! आपका यह शिष्य आपके एक इगित पर स्वर्ग से इन्द्र को बाँधकर सुधा-पात्र छीन-कर ला सकता है। आपके एक ही इगित पर ससार के साम्राज्य को निछावर कर सकता है।

द्रोण वीरता का अभिमान न करो, एकलव्य ! देखता हूँ, तुम्हारी नम्रता अहकार मे परिणत हो रही है।

एकलव्य (विनम्र होकर)—मुझमे क्या वीरता है, गुरुदेव! जो कुछ होगा, आपके चरणो के प्रताप से होगा।

द्रोण (व्यंग्य से)—ससार का साम्राज्य! ससार का साम्राज्य निछावर करोगे? लेकिन तुम अपने पास से कुछ भी न दे पाओगे?

एकलव्य (सोत्साह)—मेरा सर्वस्व आपका है, गुरुदेव! मुझे आपकी आज्ञा से अपने प्राणो का बलिदान करने मे भी उल्लास होगा। आप आज्ञा दे अपने सेवक को।

द्रोण और यदि न दे सके तो?

एकलव्य आज्ञा तो कीजिए, गुरुदेव! अवसर दीजिए अपने सेवक को अपनी सेवा का।

द्रोण यदि वास्तव मे मेरे शिष्य हो और मेरी दक्षिणा चुकाना चाहते हो तो अपने दाहिने कर का अंगुष्ठ मुझे दे दो।

एकलव्य (स्तम्भित-सा)—दाहिने कर का अंगुष्ठ?· गुरुदेव!

द्रोण (व्यंग्य से)—चुप क्यो हो गये? ससार का साम्राज्य निछावर करते थे न? अंगुष्ठ भी देते नही बनता?

एकलव्य (सहसा कृपाण से अंगुष्ठ काटकर गुरु द्रोण के चरणो के समीप रखते हुए)—लीजिए गुरुदेव! स्वीकार कीजिए यह तुच्छ भेट, और आशीष दीजिए अपने शिष्य को कि वह अपने पैर के अंगुष्ठ से प्रत्यचा खीच सके। आज मै महान् सौभाग्यशाली हूँ कि आपने मुझे अपना लिया।

द्रोण (साश्चर्य वरद हस्त सिर पर रखकर)—वत्स एकलव्य! तुम धन्य हो! तुम मेरे सच्चे शिष्य हो! मै आज अपने को तुम-जैसा शिष्य पाकर अत्यन्त गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। जब तक गंगा-यमुना मे जल है, तुम्हारी गुरु-भक्ति

का ससार स्मरण करेगा। यही मेरा आशीर्वाद है (अर्जुन से) और वत्स पार्थ ! आज मैंने तुम्हे जो वरदान दिया था, वह पूर्ण कर दिया। किन्तु मेरी आत्मा मुझी को धिक्कार रही है। मैंने अपने गुरुत्व पर आज कलक लगाया है। एक शिष्य का सर्वस्व छीनकर दूसरे को सौपने का महान् पाप किया है। अब तुम्हे प्रसन्नता होगी। अपने वरदान को सफल देखकर मे भी प्रसन्न हूँ, किन्तु मेरे अन्तर मे ही कोई मुझे छेद रहा है। वत्स एकलव्य के त्याग, उसकी श्रद्धा, उसकी भक्ति एव उसके दान के समक्ष मेरी गुरुता घुटने टेक गई।

एकलव्य गुरुदेव ! अर्जुन मेरा बन्धु हो गया, मेरे लिए यही पर्याप्त है। मुझे किसी राज्य का कोई प्रलोभन नही, जो मैं ससार-शिरोमणि धनुर्धर होना चाहूँ। यह तो अर्जुन के लिए ही उचित है। मेरे लिए आचार्य द्रोण का शिष्य होने मे ही कम गौरव नही है।

अर्जुन लज्जित न करो बन्धु ! मेरे कारण ही गुरुदेव तुमसे ऐसी गुरु-दक्षिणा मॉगने के लिए बाध्य हुए। मै तुम्हारा सम्मान करता हूँ और तुम्हारे समक्ष धनुर्विद्या मे अपनी हीनता स्वीकार करता हूँ। अर्जुन ससार-शिरोमणि धनुर्धर है, किन्तु वीर एकलव्य के समक्ष नत है।

द्रोण मै अर्जुन और एकलव्य जैसे शिष्यो के कारण अपने को धन्य मानता हूँ।

(अर्जुन और एकलव्य चरणो में नत होते है)

पटाक्षेप

एकता की वेदी पर

पात्र

महाराणा प्रताप	चित्तौड के युवराज
शक्तिसिंह	प्रतापसिंह के अनुज
पुरोहित	राज-पुरोहित

सैनिक-गण

वन-प्रदेश

[प्रतापसिंह नील वर्ण के अश्व 'चेतक' पर—लम्बी-लम्बी नुकीली मूछें, अग पर लोह-कवच, पृष्ठ भाग पर ढाल और कर मे भाला, तेजस्वी स्वरूप। द्वितीय अश्व पर कनिष्ठ भ्राता शक्तिसिंह—वेशभूषा प्रताप के ही सदृश, वयस उठती हुई। तृतीय अश्व पर राज-पुरोहित—आयु लगभग पचास वर्ष, श्वेत श्मश्रु, पीत अधोवस्त्र, स्कध पर उत्तरीय, कटि मे कृपाण। साथ मे कुछ सैनिक।]

प्रताप पिताजी का यह निर्देश है कि क्षत्रिय राजकुमारो की वास्तविक क्रीड़ा मृगया है। किन्तु पुरोहितराज! मुझे तो निरीह जीवों की हत्या मे शक्ति का ह्रास एव आत्म-हीनता का ही अनुभव होता है। कभी-कभी ऐसी क्रीडाओ से विरक्ति-सी होने लगती है।

पुरोहित राजकुमार! आखेट तो क्षत्रिय बालको के निमित्त रणशिक्षा एव लक्ष्य-सधान मे दक्षता का प्रथम सोपान है। साहस, निर्भयता, तत्परता, कुशलता एव उत्साह इत्यादि क्षत्रिय-सुलभ गुणो का प्रादुर्भाव वनस्थली मे मृगया के साथ ही तो होता है।

प्रताप और साथ ही नृशसता, क्रूरता, कठोरता, अत्याचार एव निर्दयता की भी तो शिक्षा मिलती है पुरोहितराज, मूक प्राणियो की क्रूर हत्या से।

शक्ति यह तो दृष्टिकोण की भिन्नता है, बन्धुवर! वस्तु एक ही होती है। हाँ, कोई उससे सद्गुण ग्रहण करता है और किसी को उसके दूषण आकर्षित करते हैं। यही दशा मृगया की भी है।

प्रताप . (व्यग्य से)—तुम गुणग्राहक कब से हो गए, शक्ति?

पुरोहित आपके सहोदर का विचार उपयुक्त है, राजकुमार! क्षत्रियो का कर्त्तव्य रक्षण है, अतः उनकी मृगया का लक्ष्य वे हिंस्र जन्तु ही होते है, जो जन-जीवन के घातक है और जिनसे साधारण जनता आक्रान्त रहती है। सच्चा क्षत्रिय-कुमार भोले-निरीह पशुओ पर शस्त्र-सचालन नही करता। इसलिए उसके हृदय मे नृशसता एव कठोरता के लिए अवकाश ही नही रहता।

प्रताप लेकिन जो आखेट रसना-लोलुपता के लिए करते हैं, वे हिंस्र पशुओ की ओर ताकते भी नही।

पुरोहित यह कर्म तो व्याधो का है राजकुमार, क्षत्रियो का नही। व्याध अपनी उदर-पूर्ति के निमित्त दीन विहगो और भोले मृगो को अपना लक्ष्य बनाते है। इसीलिए तो उनमे क्रूरता और भयकरता पाई जाती है। क्षत्रियो के आखेट का उद्देश्य तो मनोरजन के साथ-साथ जन-मगल की भावना भी है।

प्रताप अब समझा पुरोहितराज, मृगया का रहस्य। नही तो भोले मृगो के वध के अनन्तर उनके नेत्रो की मूक करुणा को देखकर मेरा हृदय आहत हो जाता था और मुझे मृगया से विरक्ति-सी होती थी।

शक्ति बन्धुवर, आप तो मृगया मे बडी तत्परता दिखाया करते थे। आज अचानक यह परिवर्तन कैसे दिखाई दिया?

प्रताप मानव-मन की चपलता ही विचारो की अस्थिरता की जननी है, वत्स ! जो कभी ससार के प्रति वितृष्णा और विराग की भावना उत्पन्न कर अध्यात्म की भूमिका प्रस्तुत करती है और कभी ऐहिक जीवन के भौतिक वैभव की ओर आकर्पित कर उसे ही सार मानने को वाध्य करती है, उसी चपलता का लक्ष्य मै भी वन रहा था इस समय ।

शक्ति तो पुरोहितराज के वचनो से अव तो मृगया पर आपका ध्यान केन्द्रित है न ? क्योकि आज मै यह सकल्प लेकर आया हूँ कि आज आपसे पूर्व लक्ष्य-विद्ध करूँगा ।

प्रताप तुम्हारा सकल्प एव उत्साह सराहनीय है और मेरे विरागमय शब्दो से तुम्हे अपनी सकल्प-पूर्ति का विश्वास भी हो गया होगा । किन्तु सावधान ! प्रताप अकर्मण्य नही रहेगा ।

पुरोहित विवाद का अवसर नही, राजकुमार ! स्पर्द्धा वाछनीय है उन्नतिशील युवको के लिए, यदि वह ईर्ष्या का रूप धारण न कर ले । देखो, अव हम गहन वन मे पहुँच गए है । अव कही भी आखेट का अवसर मिल सकता है , इसलिए व्यर्थ विवाद को छोडकर मृगया के लिए तत्पर रहो । (नेपथ्य की ओर देखकर) देखो, वह शूकर जा रहा है ।

प्रताप (देखकर)—रुको शक्ति ! मै शर-सन्धान करता हूँ ।

शक्ति मैने प्रत्यचा पर विशिख चढा लिया । आप रुकिए ।

प्रताप नही, मेरा चढा हुआ शर उतर नही सकता ।

(शर छोडता है)

शक्ति (शर छोडते हुए)—लीजिए, मेरा भी शर छूट गया ।

(तीनो अश्व नेपथ्य की ओर जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

(मृतक शूकर के पास तीनो अश्वारोही आते है)

शक्ति देखिए वन्धु! मेरा लक्ष्य कितना सच्चा रहा! आपसे पूर्व ही मैने आखेट कर दिखाया न!

प्रताप . शक्ति, यह तुम्हारा दृष्टि-दोष है। शूकर मेरे शर का लक्ष्य वना है।

शक्ति यह आपका भ्रम है। शूकर मेरा लक्ष्य वना है। इसका आभास तो मुझे शर-सधान के समय ही हो गया था।

प्रताप वह आभास तुम्हारी भावना का फल था। तुम अपने मन मे मुझसे पूर्व आखेट करने का जो सकल्प जो कर चुके थे, इसी से तुम्हे लगता है कि शूकर तुम्हारा लक्ष्य वना। किन्तु तुम्हे यह ज्ञात है कि प्रताप का लक्ष्य कभी चूकता ही नही।

पुरोहित दोनो की वाते अनुमान पर आधारित है, राजकुमार! आप दोनों ही अपने-अपने आत्म-विश्वास के कारण शूकर को अपना-अपना लक्ष्य समझ रहे है। इसमे विवाद की क्या आवश्यकता? मृगया का उद्देश्य पूर्ण हो गया। पशु मारा गया, चाहे वह किसी का लक्ष्य वना हो।

शक्ति नही पुरोहितराज! इसका निर्णय तो होना ही चाहिए कि आज की सफलता का श्रेय किसे है?

पुरोहित . निर्णय की आवश्यकता नही, कुमार! तुम दोनो ही वीर हो। दोनो ने साथ-साथ ही शस्त्र-सचालन किया था। सम्भव है, पशु दोनो ही का एक-साथ लक्ष्य वन गया हो!

शक्ति किन्तु चिह्न तो उसके गात मे एक ही शस्त्र का है और यह निश्चय है कि वह शस्त्र मेरा ही था ।

प्रताप नही, वह शस्त्र मेरा था । मेरे ही आघात से पशु का वध हुआ है ।

पुरोहित तो ठीक है, छोटे कुमार समझे कि पशु उनका लक्ष्य वना और राजकुमार समझे उनका । इसी मे दोनो का मनोरजन है, फिर विरोध कैसा ?

शक्ति नही पुरोहितराज ! शूकर लक्ष्य एक का ही वना है और इसके निर्णय की आवश्यकता है ।

पुरोहित तव तो कुमार, यह निर्णय होना कठिन ही नही, असम्भव है ।

शक्ति (असि खीचकर)—कैसी वाते करते हो पुरोहितराज ? इसका निर्णय यह असि करेगी ।

प्रताप (सावेश कृपाण खीचकर)—मै इसके लिए प्रस्तुत हूँ शक्ति ! किन्तु आश्चर्य है, मेरे समक्ष तुम्हारा इतना साहस !

पुरोहित (शक्तिसिंह से)—छोटे कुमार ! उद्धत न वनो । तुम्हारा यह कृत्य अशिष्टता और राजमर्यादा की अवहेलना का सूचक है । तुम्हे अपने अनुज का सम्मान करना चाहिए ।

शक्ति इसी का तो इन्हे दम्भ है । युवराज होकर ही तो इन्हे अभिमान हो गया है । तभी तो मेरे लक्ष्य को अपना वता रहे है ।

प्रताप शक्ति ! सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है ।

तुम्हारी उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता का दण्ड तुम्हे मिलेगा।

शक्ति प्रस्तुत हूँ पहले ही। यदि साहस है तो आगे बढो और देखो, शक्तिसिह के लक्ष्य को अपना बताने का क्या परिणाम होता है ?

प्रताप (असि खीचकर आगे बढते हुए)—आ वाचाल! आज अपनी मृगया का मनोरजन तुझसे ही करूँगा।

पुरोहित (प्रताप के समक्ष होकर)—राजकुमार! क्षमाशीलता वीरो का आभूषण है और फिर शक्ति तो तुम्हारे अनुज है। बालको की उद्दण्डता तो मार्जनीय ही होती है, कुमार!

प्रताप यह मेरी प्रतिष्ठा और गौरव का प्रश्न है पुरोहितराज! जो क्षत्रिय विरोधी की ललकार को सुनकर चुप रह जाता है, वह क्षत्रियत्व से पतित हो जाता है। विप्रदेव! यही आप-जैसे गुरुजनो की मान्यता है।

पुरोहित प्रतिष्ठा और गौरव ? विरोधी की ललकार ? अपने अनुज पर शस्त्र उठाने मे प्रतिष्ठा और गौरव ? अपना ही सहोदर विरोधी ? क्या बात करते हो, प्रताप ? यह गृह-विद्रोह मेवाड के पतन का कारण होगा।

प्रताप किन्तु पुरोहितराज! आज शक्ति मेरा अनुज कहाँ रहा! वह तो युद्ध के लिए आह्वान कर रहा है। फिर मै चुप रहकर क्या भीरु नही कहा जाऊँगा ?

पुरोहित शक्ति के वचनो की अवहेलना तुम्हारी वीरता की सूचक होगी, राजकुमार! सबल एव शक्तिवान की ललकार सुनकर चुप बैठना कायरता है, क्षमाशीलता का उपहास है, किन्तु अशक्त तथा अपने से छोटो की उद्दण्डता पर ध्यान न देना महत्ता एव क्षमाशीलता का गौरव है।

शक्ति (रोष से)—पुरोहितराज ! मुझे उद्दण्ड और अशक्त वताकर आप मेरा अपमान कर रहे है। ध्यान रहे, मेरी शिराओ मे भी सिसौदिया रक्त प्रवाहित हो रहा है। मै भी अपने महत्त्व और गौरव की रक्षा करना जानता हूँ।

पुरोहित छोटे कुमार ! मै तुम्हे अशक्त नही कहता हूँ। तुम वीर हो, किन्तु वीरता का अलकरण विनय एव नम्रता से ही होता है। अपने अग्रज का सम्मान करने मे ही तुम्हारी वीरता की शोभा है।

शक्ति तो वे फिर क्यो नही मान लेते कि शूकर मेरा लक्ष्य वना है ? मेरे लक्ष्य को उन्हे भी तो अपना नही वताना चाहिए ?

प्रताप फिर वही वात ! मै कहता हूँ, शूकर मेरा लक्ष्य वना है।

पुरोहित राजकुमारो ! झूठी प्रतिष्ठा के लिए मत लड़ो। दोनो की प्रतिष्ठा भिन्न नही है। देश की प्रतिष्ठा की ओर देखो।

प्रताप यही तो मै भी कहता हूँ। किन्तु यह वार-वार मेरे लक्ष्य को अपना वता रहा है।

शक्ति तो फिर हो जाय निर्णय। भगवती भवानी ही इसका निर्णय करेगी। (पुन. तुरन्त असि खीच लेता है)

पुरोहित (दोनो हाथ उठाकर)—राजकुमारो ! अपनी पीडित माता की ओर देखो ! झूठे गौरव पर सिसौदिया वश का सर्वनाश न करो। प्रताप ! माँ तुम्हारा मुख देख रही है। राजपूत राजे एक-एक करके मुगल-सम्राट् के चरणो मे अपना मस्तक नत कर रहे है। उसकी गृद्ध-दृष्टि चित्तौड

पर भी है। सीमा पर प्रतिक्षण शत्रु खडा दिखाई देता है। चित्तौड को तुम्हारी ही आशा है। यह परस्पर का विरोध त्यागकर जननी की रक्षा मे ध्यान दो दोनो भाई।

प्रताप उद्दण्ड को उद्दण्डता का दड तो देना ही होगा पुरोहित-राज!

शक्ति युवराजपन के दम्भ को तो मिटाना ही होगा पुरोहित-राज!

पुरोहित राजकुमारो! भगवान् एकलिग के नाम पर, जननी जन्मभूमि के नाम पर, वीर-प्रसू माँ के नाम पर, वाप्पा रावल के नाम पर और राणा साँगा के नाम पर इस विरोध का त्याग करो!

प्रताप शक्ति, अब भी मान जाओ! क्षमा कर दिए जाओगे।

शक्ति (सावेश)—क्षमा! कैसी क्षमा? किससे क्षमा? आप ही अपना दम्भ त्यागकर क्यो नही मान लेते कि लक्ष्य मैने विद्ध किया?

प्रताप (सक्रोध)—पुरोहितराज! शान्त रहने से इसकी अशिष्टता सीमा का उल्लघन करती जा रही है। आप हट जाइये। इसे शिष्टता का पाठ पढाना ही होगा।

शक्ति हट जाइये पुरोहितराज! मुझे इसके दम्भ का गमन करना ही होगा।

पुरोहित राजकुमारो! मै जीवित रहते सिसौदिया वश का नाश नही देख सकता। मेरे पूर्वजो ने जिस वश की समृद्धि मे सदा ही योग दिया है, मै उनकी कीर्ति पर कलक नही लगा सकता। आप लोग भले ही विस्मृत कर दे।

प्रताप और शक्ति पुरोहितराज! वाधा न डालिए। अब तो

लक्ष्य-विद्ध होने का निर्णय होकर ही रहेगा।

(दोनो एक ओर हटकर एक-दूसरे पर वार करने को उद्यत होते है)

पुरोहित (दोनो के मध्य पहुचकर)—लो क्षत्रिय-कुल-कलको, लो ! नही मानते तो लो ! मेरे रक्त से अपनी रक्त-पिपासा शान्त करो।

(तुरन्त ही कृपाण निकालकर अपने वक्ष में विद्ध कर लेते हैं। एक आह के साथ गिर पडते हैं। प्रताप और शक्ति स्तभित होकर देखते रह जाते है।)

प्रताप (सक्रोध)—शक्ति ! तुम्हारे दुराग्रह, तुम्हारी अशिष्टता और उद्दण्डता का परिणाम है यह ! जाओ, तुरन्त मेवाड का परित्याग कर दो ! तुम-जैसे कलकियो के लिए यहाँ स्थान नही है।

शक्ति (अश्व पर चढते हुए)—पिताजी ने युवराज बनाया है, इसी का अभिमान है न आपको ? लीजिये, मै जाता हूँ, किन्तु इस मद का नाश करने शीघ्र ही आऊँगा।

(प्रस्थान)

प्रताप (शव के समीप करुणा से)—ओह पुरोहितराज ! तुम धन्य हो ! हम पातकियो के कारण आपका बलिदान हुआ। हम हत्यारे है, कुल-कलक है, सिसौदिया वश के अभिशाप है हम। पुरोहितराज ! सिसौदिया-कुल के शुभचिन्तक ! एकलिग के पुजारी ! अब हमे कौन शुभ मन्त्रणाएँ देगा ? कौन विपत्ति मे धैर्य दिलाएगा ? कौन हमारा पथ-प्रदर्शन करेगा ? आह ! एकता की वेदी पर आपका बलिदान हुआ, फिर भी हम एक न हो सके। आह ! (कुछ क्षण बाद खडे

होकर) पुरोहितराज ! जिस देश-भक्ति की भावना से आपने अपना बलिदान किया है, प्रताप प्रतिज्ञा करता है कि उसके जीते जी शत्रु इस देश की ओर आंख भी न उठा सकेगा। मै प्राण-प्रण से उसकी रक्षा करूँगा।

(शव के चरणो पर मस्तक रखते है)

पटाक्षेप

प्रणय-चिह्न

पात्र

सरदार चूड़ावत	:	चित्तौड का युवक सेनापति
नव-वधू		चूडावत की नवोढा पत्नी
मंगला		नव-वधू की सहचरी

दो युवतियाँ और चर

[उन्नत प्रासाद की भव्य अट्टालिका—विभिन्न मादक चित्रो से चित्रित दीवारे, खिडकियो पर रगीन कौशेय पट ; दीवारो मे चतुर्दिक् विभिन्न प्रकार के शिल्प-कौशल के द्योतक गवाक्ष, जिनसे आती हुई शीतल-मन्द पवन , मध्य मे विभिन्न पुष्पमालाओ से सज्जित शुभ्र कौशेय-आस्तरण से आच्छादित कलात्मक पर्यक , द्वार पर हस्त-कला-कौशल का निदर्शक सुन्दर पट । कोणो मे प्रज्वलित दीप-शलाकायें ; अगरु की सुवास से गन्धमान वायु-मण्डल । बाहर राका-शशि की छिटकी हुई शुभ्र-ज्योत्स्ना ; गवाक्षो से झाँकता हुआ-सा निशाकर । राजसी वस्त्रो से सुशोभित बीस-वर्षीय युवक सरदार चूडावत प्रतीक्षा को मुद्रा मे कभी पर्यकासीन हो जाते है, कभी कक्ष मे टहलने लगते हैं, कभी गवाक्ष के समीप खडे हो जाते है। प्रशस्त ललाट, कान्तिपूर्ण मुख-मण्डल, आजानु बाहु, बल-पौरुष की साक्षात् प्रतिमा । नेपथ्य मे वाद्यो के साथ महिलाओ के कठ-स्वरो की मधुर सगीत-ध्वनि]

चूड़ावत (गवाक्ष के समीप खडे होते हुए)—ओह ! प्रतीक्षा भी कितनी मधुर होती है ! उसमे जो एक आनन्दमयी पीडा और अनुरागमयी कसक रहती है, वह कितनी स्पृहणीय बन जाती है ! राका-शशि गगनागन के मध्य मे आकर अपने शीतल करो के स्पर्श से जैसे उस मधुमयी वेदना को द्विगुणित कर रहा है । मन्दानिल, रोम-कूपो से प्रविष्ट होकर हृदय को उत्तेजित कर रहा है और महिलाये अपने राग-रस मे इतनी तल्लीन हैं कि उन्हे ध्यान ही नही

है कि कोई कितना आतुर और आकुल हो रहा है। नव-वधू की सगीत-कला की सव आज ही परीक्षा लेना चाहती है! आह, जितनी मिठास है प्रिया के स्वर मे, काकली मे क्या होगी ? अपनी कोमल उँगलियो से वीणा के तारो को छेडती हुई भावमय मुद्रा मे जव मेरी प्रिया मेरे समक्ष सरस्वती का आह्वान करेगी, तव कितना मादक क्षण होगा !

(कल्पना-लीन होकर नेत्र बन्द कर लेते हैं। नेपथ्य मे सहसा गान बन्द हो जाता है। नारियो के हास-परिहास की ध्वनि श्रवणगोचर होती है)

चूड़ावत (जैसे चौककर)—ओह, गान वन्द हो गया। हास्य की ध्वनि गूँज रही है। सम्भवत प्रियतमा को लाने का उपक्रम हो रहा होगा! वह लज्जावश आने मे आपत्ति कर रही होगी और वहिन या भाभी ने कुछ परिहास किया होगा, तभी यह अट्टहास हो रहा है।

(नेपथ्य में सीढियो पर चढने की मन्द-मन्द पद-चाप सुनाई देती है।)

अहा! सचमुच मेरी प्राण-प्रिया आ रही है। चलूँ, शयन करूँ।

(पर्यंक पर आकर उज्ज्वल उत्तरीय ओढकर शयन का अभिनय करते हैं। दो युवतियाँ धीरे-धीरे आकर्षक वस्त्राभूषणो से सज्जिता अवगुठनमयी नव-वधू के साथ प्रवेश करती है।)

प्रथम युवती अरे भैया सो भी गए। अर्द्ध-रात्रि भी तो व्यतीत हो गई। कहाँ तक नीद न आवे!

द्वितीय युवती (उत्तरीय खीचते हुए)—बडी भोली हो ननद-

रानी ! अरी, कही आज की रात्रि भी नीद आती है !
हमारे देवर अभिनय-कला मे वडे कुशल है। अभी तक तारे
गिनते रहे होगे, हमारे आते ही शयन का वहाना करने
लगे। उठो जी, सम्हालो अपनी कल्पलतिका को। तमाल-
तरु का सहारा लिये विना कसे वढेगी यह !

चूड़ावत . (पुन. उत्तरीय ओढने का उपक्रम करते हुए कृत्रिम खीज
से)—अहँ, सोने दो, वडी नीद लगी है।

द्वितीय युवती (उत्तरीय झटककर गुदगुदाते हुए)—मै सब जानती
हूँ, कैसी नीद लग रही है। अधिक वहाना न वनाओ।
आँखे विछा रहे होगे द्वार पर !

चूड़ावत · (अधरों पर हास लाते हुए)—मुझे परिहास अच्छा
नही लगता, भाभी ! व्यर्थ ही जगा दिया।

द्वितीय युवती : हाँ भाई, अव परिहास क्यो अच्छा लगेगा !
और मैं भी कहाँ परिहास करती हूँ ! देखो न, सुकुमारी
वधू को। कव तक बेचारी खडी रहेगी ! और देखो, अभी
नवीन कलिका ही है यह, कही मदमत्त गज न वन जाना।
मधुप-कुमार ही रहना, इतना वताए जाती हूँ। चलो
ननदरानी, चले। अव ये जाने और इनकी प्रिया। हमने
तो इनकी धरोहर इन्हे सौप दी।

(उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना दोनो का तीव्रता से प्रस्थान। नव-
वधू अपने मे सिमटती हुई-सी खड़ी है)

चूड़ावत कल्प-लतिका भाभी ने सच ही कहा था। आओ,
मेरी चिर-सचित कामनाओ की प्रतिमा, आओ ! अव यह
अवगुठन, यह लज्जा किसलिए ? देखो, गगन मे निशानाथ
हँस रहा है अपने सौन्दर्य के मद मे। घूँघट के मेघ को हटा-

कर उसमे छिपे हुए चन्द्रमा से गगन के शशि को लज्जित कर दो। आओ, पर्यंक पर आसीन हो जाओ।

नव-वधू (मन्द-स्वर से)—अब शयन करे आर्य-पुत्र! आपको निद्रा आ रही है। मै चलती हूँ! (द्वार की ओर मुडती है)

चूड़ावत (पर्यंक से उतरकर कर पकडते हुए पर्यंकासीन कराके)—जिन नेत्रो मे प्रियतमा की दर्शनोत्कण्ठा समाई हो, उनमे प्रवेश करने का साहस निद्रा देवी भला कैसे कर सकती है, प्रिये!

नव-वधू यह तो मै नही जानती। आप ही कह रहे थे अभी!

चूड़ावत. मै जो कह रहा था, उसमे कितना सत्य था, यह तो भाभी भी जान गई। क्या मेरे हृदय की प्रतिमा ही नही जान पाई उसे ?

नव-वधू मै क्या जानूँ ?

चूड़ावत तो अब जान जाओगी। कितनी आकुलता थी इस क्षण के लिए! जीवन की अनन्त साधे, अमित कल्पनाये, अनेक स्वप्न एक-साथ घुमडकर हृदय को किस प्रकार आन्दोलित कर रहे थे! यदि तुम्हारे मधुर स्वर का अवलम्व न मिला होता, तो न जाने इसकी क्या दशा होती!

नव-वधू मेरे स्वर का अवलम्व! नही तो, मै तो संगीत का प्रथमाक्षर भी नही जानती। कही भ्रान्ति तो नही हो गई आपको ?

चूडावत यह तो मेरे श्रवणो से पूछो! अपनी वीणा की एक-एक झंकार से पूछो! (अवगुण्ठन हटाते हुए) कर्ण तो तृप्त हो गये। अब इन नेत्रो को भी तो रूप-सुधा का पान करने दो!

नव-वधू (घूँघट-पट को पकडती हुई, लज्जा के साथ)—छोडिए

न, मुझे स्वय अपने पर लज्जा आती है। पता नही कैसी हूँ मै।

चूड़ावत कैसी हो, यह मै बताऊँ ? चन्द्र-विनिन्दक आनन! विश्वास न हो तो देखो, तुम्हारे मुख की सुषमा से पराजित होकर बेचारा कैसे अस्ताचल की ओर भाग रहा है!

नव-वधू अहा! आप तो कवि भी है।

चूड़ावत जिसके समक्ष मानस-सागर की ऊर्मियो की भाँति कुन्तल-राशि नक्षत्रमालिका-सदृश मुक्ताओ से मडित हो, स्फटिक की कान्ति को क्षीण करने वाला मस्तक बालारुण-से कुकुम-बिन्दु से सुशोभित हो, मनसिज के धन्वा से भी अधिक उर-वेधक भ्रू-भगिमा से दृष्टि-शर छूट रहे हो, सरसिज-दलो को लज्जित करने वाले अधरो पर दन्तपक्ति की विद्युत्प्रभा विकीर्ण कर रही हो, वह तो बरबस ही कवि हो जायगा।

नव-वधू (ईषत् मुस्कराते हुए)—बस कीजिए, इस तुच्छ दासी को अधिक लज्जित न कीजिए।

चूड़ावत दासी नही, तुम मेरे हृदय-मन्दिर की देवी हो। पूर्व जन्म के किन पुण्यो से प्राप्त हुई हो तुम ? तुम्हे पाकर मै सचमुच बडा सौभाग्यशाली हूँ।

नव-वधू सौभाग्यशालिनी तो मै हूँ, नाथ! कितनी मनौतियो, कितनी अर्चनाओ और कितनी उपासनाओ के फलस्वरूप प्राप्त हुए है मुझे आप! मेरी कल्पना मे मेरे देवता की जैसी प्रतिमा थी, उसे मै साक्षात् पाकर धन्य हो गई हूँ।

चूड़ावत कैसी प्रतिमा थी, तुम्हारे मन मे ?

नव-वधू वह वर्णनातीत है। अपने समक्ष मै उसे देखकर विभोर हो गई हूँ।

चूडावत (आलिगन के हेतु भुजायें फैलाते हुए)—तो आओ, हम-तुम आज एक हो जायँ। अपने जीवन के सपनो को साकार करे।

नव-वधू (हाथ पकड़ते हुए)—एक तो हम उसी क्षण हो गये नाथ, जिस क्षण आपने दासी का पाणि-ग्रहण करके इसे अपने चरणो मे स्थान दिया। अब कोई शक्ति हमे विलग नही कर सकती।

चूड़ावत सचमुच हमारी आत्माये, हमारे प्राण और हमारे मन तो उसी क्षण एक हो गये। आज हमारे अग-अग भी एक हो जायँ। (पुन भुजा पसारते है)

नव-वधू इतनी आतुरता भी क्या, नाथ! जीवन अब अपना ही तो है!

चूड़ावत यह चन्द्रिका-चर्चित मधु-यामिनी, विहँसते हुए तारे, गवाक्षो से आती हुई शीतल-मन्द समीर, अगरु की यह मादक गध और मुस्कराते हुए सुमनो की ये मालाये बार-बार हृदय को आलिगन के लिए उन्मत्त बनाये दे रही है। रोम-रोम मे एक विचित्र सिहरन हो रही है। प्राण अधरो के अमृत की तृषा से आकुल हो रहे है। क्या तुमसे ये कुछ नही कह रहे?

नव-वधू मुझसे मुझसे· (सिर झुकाकर लज्जा का नाट्य करती है)

चूड़ावत हाँ, तुमसे भी तो कुछ कह रहे है! जब हम दोनो के एक प्राण है, तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि ये तुमसे कुछ न कहे?

(आगे बढकर बायाँ हाथ वधू की ग्रीवा मे डाल देता है और

दाहिने हाथ से उसे अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करता है)

नव-वधू (पीछे हटने का प्रयास करती हुई)—नहीं-नहीं छोडिए, मुझसे कोई 'कुछ' नही कह रहा है।

चूड़ावत अहा, इस नहीं मे भी कितना माधुर्य है! नहीं मे जो स्वीकृति है, जो आमन्त्रण है, वह क्या 'हाँ' मे कभी हो सकता है?

(आलिगन-पाश मे आबद्ध करने का पुनः प्रयत्न करता है)

नव-वधू (सिमटती-सी)—ओह, अपने मनोनुकूल अर्थ लगाने मे आप कितने चतुर है! मुझे यह सब नही सुहाता।

चूड़ावत (हँसते हुए)—नही सुहाता! मै जानता हूँ तुम्हे क्या सुहाता है? आओ, अधिक न सताओ! तृष्णा अब सहन नही होती।

(आलिगन-पाश मे लेकर अधर-चुम्बन को उद्यत होता है कि नेपथ्य से तूर्य-ध्वनि सुनाई देती है।)

चूड़ावत (चौंककर पीछे हटते हुए)—तूर्य-ध्वनि! रण का आह्वान!! यह आकस्मिक सकट कैसा? किसने अपनी मृत्यु को आमन्त्रित किया है?

नव-वधू: (आश्चर्यान्वित होकर)—रण का आह्वान! यह मधु-यामिनी! ये विहँसते हुए तारे यह शीतल-मन्द समीर

चूड़ावत कुछ नही प्रिये, कुछ नही! भूल जाओ मधु-यामिनी को! यह काल-रात्रि है, काल-रात्रि! वीर का धर्म है उसकी अर्चना करना! देखता हूँ, रण-यज्ञ मे समिधा कौन बनना चाहता है!

(तीव्र गति से प्रस्थान)

नव-वधू (पर्यंक से उतरकर गवाक्ष की ओर बढते हुए)—चले

गये मेरे देवता चले गये ! यह मधु-यामिनी · रण का आह्वान काल-रात्रि · नही-नही मधु-यामिनी शीतल समीर ! हाँ, मुझसे भी ये 'कुछ' कह रहे है। जब एक प्राण हो तब कैसे सम्भव है, मुझसे ये 'कुछ' न कहे ? पर पर अब क्या होगा ? (चिन्तित मुद्रा)

मंगला (प्रवेश करती हुई)—आर्ये ! क्या आर्य चले गए ? पद-चाप सुनकर ही मै आई हूँ। क्यो, क्या बात हुई ?

नव-वधू (चौंककर)—तूने नही सुना तूर्य-नाद, मगले ? मधु-यामिनी नही-नही, काल-रात्रि ! रण का आह्वान ! तूर्य-नाद सुनकर स्वामी चले गए। मै अपने हृदय को बात भी न कह पाई। अब क्या होगा ?

मंगला धैर्य धारण करे, आर्ये ! आपके स्वामी अजेय वीर है। विजय-श्री उनके चरण चूमती है। किन्तु यह अकस्मात् तूर्य-नाद कैसा ?

नव-वधू वही तो मै भी कहती हूँ। शहनाई के स्थान पर तूर्य-नाद, वीणा की झकार के स्थान पर धनुप-टकार, मधुर हास के स्थान पर भीषण क्रोध, लास्य के स्थान पर ताण्डव, यह कैसा विचित्र योग है, मगला ? मधु-यामिनी ही काल-रात्रि ! कैसा भाग्य है मेरा ?

मगला यह आपका सौभाग्य है, आर्ये ! आपने उनका प्रेम देखा, अब पौरुष भी देखिए।

नव-वधू प्रेम ! मगले, प्रेम कहाँ देखा ! देखा, हाँ-हाँ देखा, पर कुछ समझ न पाई। अपने को अर्पित न कर सकी उन्हे। और पौरुप की तो वे प्रतिमूर्ति है ही।

मंगला पौरुप मे ही तो प्रेम खिलता है, आर्ये ! अभी ही तो उनका प्रेम खिलेगा और प्रेम ही से उन्हे शक्ति मिलेगी।

प्रेम और पौरुष, पौरुष और प्रेम—यही तो शूरवीरो का आभूषण है।

नव-वधू : किन्तु मगले ! मै तो उन्हे अपना प्रेम दे ही न सकी।

मंगला धैर्य रखिये, आर्ये ! अभी वे आएँगे…

(नेपथ्य मे पद-चाप की ध्वनि)

देखिए, सम्भवत वे आ रहे है। मै चलती हूँ।

नव-वधू मेरा हृदय कॉप रहा है, मगले ! यही रहना, कही दूर न जाना !

मंगला . वीर रमणी है आप। यह व्यग्रता क्यो ? नारी पुरुष की शक्ति है, दुर्बलता नही।

(एक ओर से मगला का प्रस्थान, दूसरी ओर से सरदार चूडावत का प्रवेश)

चूड़ावत भयानक आपत्ति है, प्रिये ! भीषण रण का आह्वान है।

नव-वधू . (आतुरता से)—कैसी आपत्ति है, नाथ ?

चूड़ावत : रूपनगर की राजकुमारी को बादशाह औरगजेब अपनी बेगम बनाना चाहता है। उसने दिल्ली से प्रस्थान कर दिया है और राजकुमारी ने हमारे महाराणा राजसिह को वरण किया है। उसने सन्देश भेजा है कि हस-वाला बक का वरण नही करेगी ! सिह-सुता शृगाल की वधू नही बनेगी ! इसकी अपेक्षा वह कटार को हृदय से लगाएगी या विष-पान कर लेगी।

नव-वधू (उत्साह से)—ठीक ही कहा है उसने ! किन्तु अब क्या होगा ?

चूड़ावत ' हमारे महाराणा औरगजेब से पूर्व ही रूपनगर पहुँच-

कर उसका पाणि-ग्रहण करेंगे और हम उस पर मार्ग में ही आक्रमण कर उसके मनोरथ को विफल कर देंगे।

नव-वधू यह मेरा परम सौभाग्य है कि मेरे स्वामी एक राजपूत कन्या के उद्धार के लिए प्रस्थान कर रहे हैं।

चूड़ावत . किन्तु.....

नव-वधू किन्तु क्या, नाथ ?

चूड़ावत : औरंगजेब के पास विशाल वाहिनी है और हमारे पास है मुट्ठी-भर सैनिक। सागर के ज्वार को सिकता की प्राचीर कहीं रोक सकेगी ?

नव-वधू सिकता की प्राचीर न कहिए, नाथ! वज्र की चट्टान कहिए। राजपूत वीर की शिराओं के शोणित की एक-एक बूँद में अनेक शत्रुओं के हनन की शक्ति होती है, स्वामी !

चूड़ावत : जानता हूँ, प्रिये! किन्तु......

नव-वधू किन्तु क्या ?

चूड़ावत तुम्हारी यह सद्य-सज्जित सीमन्त-रेखा, कर-कमलों की राग-रंजित मेंहदी, पगों का अरुणिम अलक्तक, और ये सौभाग्य-वलय! नयनों की लाज और अधरों का सुहाग! क्या देखा है अभी तुमने ?

नव-वधू : इनकी चिन्ता छोड़िये, नाथ! एक क्षत्रिय-कुमारी के सतीत्व की रक्षा के समक्ष इनका कोई मूल्य नहीं। जब आप विजय-श्री का वरण करके लौटेंगे, तब इनमें और भी निखार आ जायगा। अपने सौभाग्य पर इठलायेंगे तब ये।

चूड़ावत हमारे चिर-संचित सपने, हमारे जीवन की अनन्त साधें, यह मधु-यामिनी · ···

नव-वधू सपने भी साकार होंगे, स्वामी! साधें भी सफल होंगी और आपकी विजय के साथ यह मधु-यामिनी भी

सुधा-स्नात होकर आएगी।

चूड़ावत : (आतुरता से)—बस, एक आलिगन, प्रिये! पता नही फिर मिलन हो, न हो।

नव-वधू . कैसी अशुभ बाते करते है, नाथ! काल-रात्रि की अर्चना कीजिए, स्वामी! शत्रु के शोणित से रण-चण्डी का खप्पर भरिए, नाथ! एक अबला की लाज बचाइए, देव! एक आलिगन नही, शत-शत आलिगनो के लिए प्रस्तुत है दासी। वीर-धर्म का पालन कीजिए। विजय-श्री के साथ अमित उल्लास से दासी अपने स्वामी का स्वागत करेगी।

चूड़ावत इसी मे तो सन्देह है।

नव-वधू वीर के हृदय मे तो सन्देह के लिए स्थान ही नही होता। दृढ निश्चय और अटूट विश्वास से भरा होता है उसका हृदय।

चूड़ावत सत्य कह रही हो, प्रिये! मेरे हृदय मे भी उत्साह कम नही है। पर कहाँ औरगजेब की विशाल वाहिनी और कहाँ थोडे-से राजपूत सैनिक! हम केवल अवरोध ही कर सकते है रणाग्नि मे अपनी आहुति देकर।

नव वधू ऐसा न सोचिए, नाथ!

चूड़ावत यह उतना ही ध्रुव सत्य है प्रिये, जितना प्राची मे सूर्य का उदय।

नव-वधू · (उत्तेजित होकर)—यदि ऐसा है, तो दासी स्वर्ग मे अपने स्वामी की सेवा करेगी। अग्नि के रथ पर चढकर अनुगमन करेगी अपने देव का।

चूड़ावत क्या यह शिरीष-सुमन-सा गात अग्नि का स्पर्श कर पायेगा?

नव-वधू (उत्तेजना के स्वर मे)—हाडा वश की पुत्री और

सिसौदिया कुल की वधू के सम्बन्ध मे यह शका क्यो हुई स्वामी को ? यह मेरा दुर्भाग्य है। भगवान् एकलिंग की आन देकर कहती हूँ कि मुझे अपने स्वामी से कोई भी शक्ति विलग नही कर सकती। वह इस भूतल पर, अन्तरिक्ष मे और स्वर्ग मे सर्वत्र अपने स्वामी का अनुगमन करेगी।

चूड़ावत (हर्ष से)—अब मै प्रसन्न हूँ, देवि! रण के लिए सज्जित कर अब मुझे विदा दो!

नव-वधू (उच्च स्वर से)—मगले! अर्चना का थाल तो ला। तब तक मै स्वामी को सज्जित करती हूँ।

(सेनापति जैसे वस्त्र, शिरस्त्राण, कवच, कृपाण, ढाल, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित करती है। मगला अर्चना का थाल सजाकर लाती है। नव-वधू अक्षत-कुकुम से तिलक करके आरती उतारती है और चरणो मे झुक जाती है।)

चूड़ावत (हाथ पकडकर उठाते हुए)—मै आज धन्य हूँ, प्रिये! तुम्हारे प्रेम का सम्वल लेकर निर्भय युद्ध कर सकूँगा।

नव-वधू यह मेरा सौभाग्य है, स्वामी! भगवान् एकलिग से विनय है कि आप विजय-दुन्दुभी के साथ लौटे।

चूड़ावत अच्छा देवि, विदा! (प्रस्थान)

(नेपथ्य मे रण-वाद्यो का तुमुल घोष। जय एकलिग का निनाद)

मंगला धन्य है, आर्ये! सचमुच आप वीर-रमणी है।

नव-वधू तुम्ही ने तो कहा था, 'नारी पुरुष की शक्ति होती है।' मैने नारी का वही कर्तव्य तो पालन किया है! भगवान् एकलिग मेरे स्वामी की रक्षा करे!

मंगला चिन्ता न करे, आर्ये! सेनापति अवश्य विजयी होगे। अनेक रणो मे विजय प्राप्त की है उन्होने।

नव-वधू आशा तो मुझे भी है, किन्तु मन कुछ उदास-सा हो रहा है।

मंगला · यह तो स्वाभाविक है, आर्ये ! कहाँ सौभाग्य की प्रथम मधु-यामिनी और कहाँ अचानक रण के लिए प्रस्थान !

नव-वधू नही, यह वात नही।· पर· होगा कुछ। आओ, गवाक्ष से स्वामी के एक बार दर्शन और कर लूँ।

(दोनो गवाक्ष के समीप आकर खडी हो जाती है)

नव-वधू (उल्लास से) देख मगले, देख, अश्व पर आरोहित एक हाथ मे वल्गा और दूसरे मे भल्ल लिये हुए स्वामी साक्षात् कार्तिकेय प्रतीत हो रहे है।

मंगला हाँ आर्ये, सैनिको को कुछ आदेश-सा दे रहे है।

नव-वधू मगले, समस्त अश्वो मे स्वामी के अश्व की गति ही विचित्र है। रण-वाद्यो की ताल पर कैसा विद्युत्-गति से नृत्य कर रहा है !

मंगला . सेनानायक है वे। उनका अश्व उनके अनुकूल ही तो होगा, आर्ये !

नव-वधू हाँ मगला ! देख, प्रभात की रवि-रश्मियो के स्वामी का मुखमडल कैसा दीप्तिमान हो रहा है ! तेज की किरणे चतुर्दिक् विकीर्ण हो रही है। सेनापति के वेश मे कैसा भव्य रूप हो गया है स्वामी का ! चाहती हूँ, निरन्तर इसी रूप का निर्निमेष दर्शन करती रहूँ।

मंगला . हमारे आर्य प्रत्येक वेश-भूषा मे सुन्दर लगते है। सौन्दर्य को किसी सज्जा की अपेक्षा नही होती, आर्ये !

नव-वधू हाँ देख, वे मेरी ओर ही देख रहे है। अरे, उनके मस्तक पर यह आकुचन कैसा ? स्फूर्तिमय अगो मे यह शिथिलता क्यो आई ? अरी सुमंगले ! वे तो अश्व से

नीचे कूद पडे। यह क्या ! वे तो इधर ही आ रहे है।

मंगला हाँ, आर्ये ! इधर ही आ रहे है। सम्भवत कुछ भूल गये हैं या आपसे कुछ कहना चाहते है। मै चलती हूँ।

(प्रस्थान)

चूड़ावत (प्रवेश करते हुए)—प्रिये !

नव-वधू स्वामी ! दासी को क्या आज्ञा है ? कैसे कष्ट किया नाथ ने ?

चूडावत कमल-दलो पर झलकते हुए शाद्वल-कणो ने आकर्षित कर लिया, प्रिये !

नव-वधू कविता न कीजिए नाथ ! स्पष्ट कहिए।

चूड़ावत तुम्हारे नयनो की आर्द्रता खीच लाई है मुझे। मै तुम्हारे उल्लास को अपना पाथेय बनाकर ले जाना चाहता हूँ, प्रिये !

नव-वधू मेरे नेत्रो मे उल्लास की ही आर्द्रता है, नाथ ! आज तो मेरा रोम-रोम आपको वीर-वेश मे देखकर आनन्द से झूम रहा है।

चूडावत सच ?

नव-वधू हाँ स्वामी !

चूड़ावत किन्तु तुम्हारी यह नवीन वयस कोमल-हृदय सौभाग्य की प्रथम रजनी जीवन के संचित स्वप्न भीषण भविष्य मेरा हृदय काँप जाता है यह सोचकर रानी !

नव-वधू नाथ ! फिर वही दुश्चिन्ता ! वही सन्देह ! वही अविश्वास !

चूड़ावत सन्देह नही, रानी ! फिर भी

नव-वधू (किंचित् आवेश मे) फिर भी क्या, नाथ ? एक ओर

अस्थि-पजर का यह नश्वर गात, दूसरी ओर अक्षय-कीर्ति, एक ओर क्षणिक विलास, दूसरी ओर क्षत्रिय बालिका नही-नही, सिसौदिया वश की भावी महिषी का सतीत्व, एक ओर वासना का कर्दम, दूसरी ओर यश की धवल ज्योति!

चूड़ावत : (कातर स्वर मे) क्या कहूँ, देवि!

नव-वधू कुछ न कहिए, देव! मेरे वलय की लाज रखिए, अपनी माता के स्तन्य का गौरव रखिए, सिसौदिया वश की मर्यादा पर ध्यान दीजिए।

चूड़ावत लेकिन तुम्हारा भविष्य?

नव-वधू मेरा भविष्य आपके साथ है, उज्ज्वल, कान्तिमय—प्रभापूर्ण! देखिए नाथ! सेना आपकी प्रतीक्षा मे है। सिसौदिया कुल की राज-वधू के लिए एक-एक क्षण मूल्यवान है। अपने साथ दासी का गौरव भी बढाइये, नाथ!

चूड़ावत अच्छा देवि! विदा! भगवान् एकलिग ने चाहा तो फिर मिलन होगा।

नव-वधू होगा, होगा, अवश्य होगा! आप मेरी चिन्ता छोड-कर स्वस्थ मन से युद्ध कीजिए। (चरणो मे नत होती है)

(चूडावत का प्रस्थान)

नव-वधू . (क्षण-भर स्तम्भित-सी देखते हुए)—स्वामी चले गये, किन्तु मेरे हृदय को दुश्चिन्ता से भर गये। मुझ तुच्छ दासी का इतना ध्यान! क्या प्रेम यही है? क्या वे निश्चिन्त होकर युद्ध कर सकेगे? नारी तो पुरुष की शक्ति है, फिर मै उनकी दुर्वलता क्यो वन रही हूँ? क्या करूँ, जिससे वे मेरा ध्यान छोड सके?

मंगला (प्रवेश करते हुए)—आर्ये! उदास क्यो है? क्या आर्य

न कुछ कहा ?

नव-वधू कुछ नही कहा, मगले ! वे केवल मेरे मोह के कारण ही आये थे। उन्हे अपनी विजय मे सन्देह और मेरे भविष्य की चिन्ता है।

मंगला विजय मे सन्देह ! ऐसा तो कभी नही हुआ। वे तो पौरुष के अवतार है। महाराणा को गर्व है उनकी वीरता पर।

नव-वधू यही तो सोचती हूँ कि मै उनके पौरुष मे बाधक क्यो बनी ? क्या करूँ मगले, जिससे वे मुक्त-हृदय होकर युद्ध कर सके ?

मंगला चिन्ता न करे, आर्ये ! शत्रु-सेना के समक्ष पहुँचते ही वे सब-कुछ भूल जायँगे। उस समय उन्हे केवल शत्रु ही दिखाई देगा। वे अवश्य विजयी होगे।

नव-वधू यही तो मेरी भी कामना है। भगवान् एकलिग मेरी लाज रखे ! (नेत्र बन्द करके ध्यानावस्थित हो जाती है। कुछ क्षणो के अनन्तर नेपथ्य में पद-चाप की ध्वनि)

नव-वधू (चौककर)—देखना मगला, कौन आ रहा है ! (मगला का प्रस्थान) हे भगवान् ! क्या स्वामी फिर लौट आये ? किन्तु यह पद-चाप तो उनकी नही प्रतीत होती।

(मगला के साथ एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक जय हो, आर्ये, ! दास प्रणाम करता है।

नव-वधू कल्याण हो ! कहो, क्या चाहते हो ?

सैनिक आर्य ने कहा है—आर्ये, अपना कोई प्रणय-चिह्न दे, जिसे देखते-देखते आर्य हँसते-हँसते युद्ध कर सके।

नव-वधू (गम्भीर उच्छ्वास के साथ)—ओह ! प्रणय-चिह्न ! स्वामी ने अभी भी चिन्ता नही छोडी ? दासी का दुर्भाग्य !

क्या दूँ ! (कुछ सोचकर) ठीक है, ऐसा प्रणय-चिह्न दूँगी जिससे वे सदा के लिए चिन्तामुक्त हो जायँ। (सहसा टँगी हुई कृपाण खींचकर नेपथ्य की ओर जाते हुए) मगले ! आ, मेरा प्रणय-चिह्न सैनिक को दे देना, मैं देती हूँ। (नेपथ्य की ओर तीव्र गति से प्रस्थान। मगला पीछे-पीछे जाती है)

मंगला (नेपथ्य में)—है-है ! आर्ये, यह क्या कर रही है ?

(जय एकलिंग के साथ कृपाण मारने की ध्वनि, एक हल्की आह)

आह ! आर्ये ! यह क्या किया ?

मंगला (रक्त-स्रवित कटा हुआ शीश लेकर प्रवेश करते हुए)—सैनिक ! यह लो, हाडी रानी का प्रणय-चिह्न !

सैनिक (स्तम्भित-सा होते हुए)—ओह हाडी रानी ! (शीश को लेते हुए)—भगवान् एकलिंग की जय ! हाडी रानी की जय ! सरदार चूडावत की जय ! (प्रस्थान)

पटाक्षेप

आह्वान

पात्र

भारत माता	
रहमान	नायक
तिरलोक सिंह	भारतीय सेना के सैनिक
चन्दन सिंह	,, ,,
जॉन	,, ,,
अब्दुल्ला	,, ,,

डॉक्टर, नर्स, रहमान की माँ, पत्नी तथा पुत्र, शत्रु-सैनिक, हिन्दू-मुसलमान नागरिक

प्रथम दृश्य

स्थान—भारत-माता का मन्दिर

[भारत-माता की भव्य प्रतिमा, तिरगा ध्वज लहराता हुआ, प्रतिमा के समक्ष भक्ति-भाव से हिन्दू-मुसलमान-सिख आदि, कृषक-श्रमिक, नर-नारी-बालको का समवेत गान]

जय भारत माता! जय भारत माता!!
हिम - गिरि - शुभ्र - किरीट सुशोभिनि,
पदतल जलनिधि ऊर्मि तरगिनि,
गग - यमुन - उरहार सुधारिणि,
वन मेखला विन्ध्यगिरि कटि पर शोभा सरसाता।
जय भारत माता!

वीर - प्रसविनी, अरि - दल - मर्दिनि,
ज्ञान - ज्योति, तम - तोम - निकन्दिनि,
निज सन्तति - हित सुधा - समर्पिनि,
शस्य-श्यामला, हृदय-ह्लादिनी, जन-जन सुख पाता।
जय भारत माता!

हिन्दू - मुसलिम - सिक्ख - पूजिता,
जैन - बौद्ध - क्रिश्चियन - वन्दिता,
वर्ण - धर्म - प्रति - वर्ग - अर्चिता,

कोटि-कोटि कण्ठो से जन-जन तव जय-जय गाता ।
जय भारत माता !

भारत माता (करुण स्वर से)—मेरी जय-जय गाने से जय नही होगी। देखते नही, मेरी केसर की क्यारी लुट रही है। मेरे मुकुट की मणि को निकालने का प्रयत्न हो रहा है। मेरे मस्तक का फोडा अठारह वर्षो से पककर मेरे प्राण ले रहा है और तुम केवल जय-जयकार मे ही मग्न हो ?

एक हिन्दू (उत्साह से)—नही माँ, हम तेरे लिए अपने प्राणो का भी वलिदान कर देगे। तुझे इस पराधीनता के पाश से मुक्त करने के लिए हमने क्या नही किया ! जेलो मे सडे, फाँसी पर लटके, नारियो के सुहाग लुटे, गोदी के वच्चे छिने, लेकिन तुझे स्वतन्त्र करके ही हमने साँस ली।

मुसलमान हाँ मादरे वतन ! तेरी खातिर हमने हर मुसीवत का सामना किया। आज भी अपनी कुर्वानी देने को तैयार है।

भारत माता तुमने जो कुछ किया है, उसे भूली नही हूँ। जो कुछ कर रहे हो, उसे भी जानती हूँ।

हिन्दू भाखडा-नगल वाँध, भिलाई-दुर्गापुर-चितरजन-कारखाने, अणुशक्ति का उत्पादन, एवरेस्ट-विजय क्या हमारी उपलब्धियाँ नही हैं ?

मुसलमान माँ ! तुझे सरसव्ज और मालामाल करने के लिए हमने वहुत-से कारखाने खोले है, नये-नये धधे चालू किए है। तुझे तेरी पुरानी विरासत दिलाकर छोडेगे।

भारत माता · हाँ, जानती हूँ। तुमने वहुत-कुछ किया है, वहुत-कुछ कर रहे हो। (आह भरकर) लेकिन · लेकिन मेरे

हृदय को दुर्बल बना रहे हो।

सभी (एक-साथ उत्सुकता से)—सो कैसे ? सो कैसे माँ ?

भारत माता : उस समय तुम मुझे एक और अखण्ड मानते थे, आज खण्ड-खण्ड करके देखते हो। तभी तो छोटे-छोटे टुकडो के लिए लडते हो। कभी भाषा के नाम पर, कभी राज्य के नाम पर, कभी किसी अन्य बहाने मुझे खण्ड-खण्ड करने के लिए सिर फोडते हो। (उत्तेजित होकर) उस समय तुममे त्याग था, सेवा-भावना थी, और आज ? आज तुम स्वार्थ मे डूब गये हो, अपनी जेबे भरना चाहते हो, कुर्सी का स्वाद तुम्हे लग गया है। इसी से झगडते हो, लडते हो।··· ··चोर बाजारी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, सभी को तुमने अपना लिया है। और अधिक क्या कहूँ ! स्वार्थ ने तुमको इतना पागल और अन्धा बना दिया है कि तुम अठारह वर्ष बाद भी अपनी बोली मे नही बोलना चाहते। क्या इससे मेरा हृदय दुर्बल नही होता ? क्या मेरे कलेजे मे दर्द नही होता ?

सभी (एक-साथ)—माँ, घबराओ नही। हम इन बुराइयो को भी जड से मिटा देगे। तेरे हृदय को शक्ति से भर देगे। तेरे कलेजे के दर्द को दूर कर देगे।

भारत माता तो फिर यह कोरा जय-जयगान छोड दो। शत्रु ने उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया है, वह बौखला गया है। उसके पागलपन की चिकित्सा करो, मेरी रक्षा करो।

युवक माँ, शत्रु तेरा बाल भी बाँका नही कर पायेगा। तेरी एक-एक इच भूमि की रक्षा हम अपने प्राणो की आहुति देकर भी करेगे।

नारियाँ माँ, हम शत्रु के लिए चण्डी बन जायेगी। अपने

पतियो को समरागण मे स्वय सजाकर भेजेगी, अपने पुत्रो की हँसते-हँसते बलि दे देगी, पर तेरी रक्षा करेगी।

बालक मॉ, तेली लच्छा के लिए हम अभिमन्यु बन जायेगे। शत्रु के दॉत तोल देगे।

किसान अपने हल की नोक से सोना उपजायेगे, मॉ! पसीने की बूँदो को मोतियो मे बदल देगे, मॉ! तेरे सैनिको को उत्साहित करेगे, मॉ!

श्रमिक अपने श्रम से तुझे सम्पन्न बना देगे, मॉ! तेरी गोदी को रत्नो से भर देगे, मॉ! तेरे मुकुट की शान रखेगे, मॉ!

भारत माता तो फिर देखते क्या हो? बढ जाओ अपने-अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर। शत्रु को दिखा दो, तुम्हारी तलवारो मे कितना पानी है! शान्ति से भरे हृदय मे कितनी ज्वाला है! अमृत के पात्र मे कितना हलाहल है!

(चरणो मे नत होकर प्रस्थान करते हुए समवेत गान)

स्वतन्त्र देश के प्रबुद्ध वीर बढ चलो!
अजेय शौर्य से अराति-सैन्य को दलो!!
प्रचण्ड-बाहुदण्ड शक्ति से फडक उठे।
महान् वज्र-घोष से गगन तडक उठे॥
खुले त्रिनेत्र रुद्र का, कँपे सकल धरा।
विशाल शत्रु-सैन्य भस्म हो, गहो त्वरा॥
चरण पडे जिधर, उधर विजय महान् हो।
ध्वजा तिरग से प्रपूर्ण आसमान हो॥
महान् तेज ले सहस्त्ररश्मि से जलो!
स्वतन्त्र देश के प्रबुद्ध वीर बढ चलो!!

(पट-परिवर्तन)

द्वितीय दृश्य

स्थान—कश्मीर का पर्वतीय प्रदेश

[शस्त्रो से सुसज्जित चार सैनिक एक विशाल शिला पर आसीन है।]

तिरलोक सिह भाई रहमान, वडी भूख लगी है, सुवह से कुछ भी तो नही मिला।

रहमान क्या वारह वज गये ?

तिरलोक (आँखें तरेरकर)—मार दूँगा पत्थर उठाकर तुझे ही, मजाक करेगा तो।

रहमान तो फिर क्यो कहता है, कुछ नही मिला ? खुदा की इतनी वडी नेऽमत को कुछ नही कहते। सुवह-ही-सुवह दुश्मन को राग मे हरा दिया, उसके हथियार छीन लिये, उसे भगा दिया, फिर भी कहते हो, कुछ नही मिला ? खुदा का शुक्र करो कि वह हमे फतह-पर-फतह दिये जा रहा है।

चन्दन सिह . ईश्वर इसी प्रकार हमे विजयी वनाता जाय, तो यह एक दिन क्या, हम महीनो भूखे रहकर युद्ध कर सकते है।

जॉन : भाई चन्दन ठीक कहता है। जीतने की खुशी मे भूख-प्यास कुछ भी नही रहती।

तिरलोक तुम तो जैसे पत्थर के वने हो सव । पर भाई, मुझे तो जीतने के वाद जोर की भूख लगती है और युद्ध मे युद्ध मे तो जब तक शत्रु को मारकर भगा नही दिया जाता, तव तक भूख-प्यास कुछ नही सुहाती ।

रहमान तो घवराते क्यो हो ? देखो, अब्दुल्ला कुछ लेकर आ रहा है ।

अब्दुल्ला (प्रसन्नता से उछलता हुआ)—मुवारक हो ! यह जीत मुवारक हो ! लो, खाओ ! दुश्मन तमाम सामान छोडकर भाग गया है । उस चट्टान के पीछे पडा है । खुदा की मेहरवानी से अब हम वेफिक्र होकर लड सकते है ।

रहमान चलो, पहले सारे सामान को उठा लाये, तव तसल्ली से खायेगे ।

(प्रसन्नतापूर्वक 'हो-हो, हा-हा' करते हुए एक ओर प्रस्थान तथा वडे-वडे थैलो के साथ थोडी देर बाद आगमन)

रहमान लो, अव खाओ जी भरकर ।

(थैले खोलकर विभिन्न वस्तुए लेकर खाते है)

चन्दन (तिरलोक से)—अरे भोजन-भट्ट ! खाये ही जायगा या इस खुशी मे कुछ गायेगा भी ?

तिरलोक हॉ, भोजनभट्ट तो मै हूँ, तुम तो जैसे फूल सूंघते हो ।

अब्दुल्ला अरे, तू तो यार जरा-से मे तुनक जाता है । गुस्सा छोड और सुना कोई चीज ।

तिरलोक भाई, गाना-वाना तो कुछ मुझे आता नही, दुश्मन का सिर उडाना अलवत्ता जानता हूँ । हॉ, यह जॉन वहुत अच्छा गाता है । गा न यार !

जॉन : भई, अकेला तो मैं गाता नहीं, सभी साथ दो तो गाऊँ।
सब : हाँ-हाँ, सभी गायेंगे।

(समवेत-गान)

हम भारत के वीर सिपाही बढ़ते जायेंगे।
आँधी में, तूफान में निर्भय बढ़ते जायेंगे॥
मरण हमारे जीवन का शुभ पुण्य पर्व होगा।
देश के हित मरने-मिटने में अमित गर्व होगा॥
आयेगी यदि मौत, खुशी से गले लगायेंगे।
हम भारत के वीर सिपाही बढ़ते जायेंगे॥
जो ताकेगा माँ को, उसकी आँख फोड़ देंगे।
अगर बढ़ाया पैर, उसे तो तुरन्त तोड़ देंगे॥
सिंह समान शत्रु-गजदल को मार भगायेंगे।
हम भारत के वीर सिपाही बढ़ते जायेंगे॥
ओ दुश्मन नापाक, मौत को बुला रहा है क्यों?
चींटी के-से पंख क्षणिक यह दिखा रहा है क्यों?
तेरे ये आकाश-कुसुम यों ही कुम्हलायेंगे।
हम भारत के वीर सिपाही बढ़ते जायेंगे॥
प्रलय मचाकर विकट वज्र बन अरि पर टूटेंगे।
धान समान शत्रु-सेना को रण में कूटेंगे॥
शोणित से वन्दन कर माँ को शीश झुकायेंगे।
हम भारत के वीर सिपाही बढ़ते जायेंगे॥

(नेपथ्य से गोली छूटने की ध्वनि)

रहमान (चौंककर)—हैं! क्या बेशर्म दुश्मन फिर आ गया? सावधान जवानो! लेटकर मोर्चा सँभालो!

तिरलोक : नायक! अबकी बार दुश्मन की संख्या बहुत मालूम

होती है, हम केवल पाँच ही हैं।

रहमान (उत्साहपूर्वक)—पाँच नही पाँच लाख है हम। फिक्र न करो। दाहिनी ओर की चट्टान की ओर से गोलियो की वर्षा करो।

(रेंगते हुए मच के दाहिनी ओर तिरलोक और अब्दुल्ला का प्रस्थान। नेपथ्य मे गोलियो की निरन्तर ध्वनि)

रहमान (मन्द स्वर से)—चन्दन ! देखो, दुश्मन का टैंक उधर बढता जा रहा है, जिधर से तिरलोक और अब्दुल्ला गोलियाँ बरसा रहे है। अगर वह दस-बीस गज भी और बढ गया, तो हममे से एक भी न बचेगा। यह मशीनगन लेकर झाडियो से सरकते हुए तुम और जॉन बाई ओर से हमला करो। दुश्मन समझे कि हम अनेक है और वह हम से घिर गया है।

जॉन लेकिन तुम यहाँ अकेले रह जाओगे।

रहमान. (कुछ आवेश से)—बहस मत करो ! जो कहता हूँ, करो। यहाँ मै अकेला ही काफी हूँ। मेरी बन्दूक आग उगलकर दुश्मनो को ख़ाक कर देगी।

(चन्दन और जॉन का बाईं ओर सरकते हुए प्रस्थान। नेपथ्य में निरन्तर गोलियो की ध्वनि)

रहमान (कभी इधर, कभी उधर देखते हुए)—शाबाश बहादुरो ! घेर लिया दुश्मन को। छक्के छुडा रहे हो उनके, बहुत खूब !

(नेपथ्य मे) या खुदा, कहर बरसा दिया है दुश्मन ने। पता नही कहाँ छिपे रहते है ? या ये चट्टाने ही दुश्मन को उगलती रहती है।

(गोली छूटने की ध्वनि के साथ ही कराह के साथ 'या अल्लाह' कहते हुए गिरने की ध्वनि)

रहमान : वाह, अब्दुल्ला वाह, खूब निशाना मारा !

(नेपथ्य मे) : हैं, यह क्या ? क्या इधर भी दुश्मन छिपे हैं ?

(गोली छूटने तथा आह के साथ गिरने की ध्वनि)

रहमान . वाह जॉन ! तुम भी क्या कम हो ? खूब मारा ! (चौंकते हुए) अरे, उधर सामने की चट्टान के पीछे से दुश्मन आता हुआ मालूम होता है। ये चारो, उधर उलझे हुए है। चलूं, मैं ही उन्हे देखता हूँ। (सरकते हुए धीरे से प्रस्थान)।

(नेपथ्य में) : अरे ! एक के बाद एक गिरते ही जा रहे हैं।

(गोली की ध्वनि, आह-कराह, नेपथ्य मे गिरने-पडने और भागने का कोलाहल होता है)

चन्दन . (प्रवेश करते हुए)—जॉन ! हमारी गोलियो की वर्षा से दुश्मन टैंक छोडकर भाग गया। वह देखो, कितनी लाशें पडी है ?

जॉन उधर से तिरलोक और अब्दुल्ला ने गोलियो पर गोलियाँ दागी, इधर से हमने। दुश्मन के तो छक्के छूट गए। भाई रहमान की तरकीब कामयाब हुई।

अब्दुल्ला (तिरलोक के साथ प्रवेश करते हुए)—खुदा का करम है, दुश्मन भाग गया। ओह ! जॉन और चन्दन भी आ गये।

(परस्पर गले मिलने तथा भारत माता की जय-जयकार करते हैं)

तिरलोक . (इधर-उधर देखकर)—पर रहमान कहाँ है ?

जॉन वह यहाँ अकेला रह गया था। चलो खोजे।

तिरलोक . रुको ! उधर गोलियो की-सी आवाज कैसी ? क्या

दुश्मन अभी तक नही भागा ? चन्दन, देख तो उस चट्टान पर चढ़कर ।

(चन्दन का प्रस्थान)

जॉन रहमान सचमुच वडा वीर और बुद्धिमान है । हो न हो, अकेला ही शत्रु से भिडने न चल पडा हो ।

चन्दन (घबराया हुआ-सा प्रवेश करके)—ओह ! रहमान अकेला मोर्चा ले रहा है। दुश्मन के दस टैंक एक-साथ वढ रहे हैं । चलो हम लोग इधर से आक्रमण करे । (खट से प्रस्थान)

नेपथ्य मे

शत्रु सैनिक ओह, इधर से भी गोलियाँ, उधर से भी गोलियाँ, गोलियाँ ही गोलियाँ ! एक भी तरकीव काम नही करती । सारी ताक़त वेकार हो जाती है ।

दूसरा सैनिक मैंने पहले ही कहा था, फिज़ूल आग मे क्यो कूदते हो ? भूसा समझ लिया है हमे भाड मे झोकने के लिए ।

(निरन्तर गोलियाँ, आह-कराह तथा भगदड का कोलाहल)

तिरलोक भाई रहमान वे पडे है । क्या शहीद हो गए ?

जॉन नही-नही, वेहोश हो गये है । अरे ! इतने भारी घाव ! चलो ले चले ।

(रहमान को लेकर प्रवेश)

तिरलोक अव्दुल्ला, जरा पानी तो ला । मुँह मे थोडा-थोडा डाल, शायद होश मे आ जायँ । और, घावो पर पट्टियाँ वाँध दो ।

(अब्दुल्ला मुँह मे पानी डालता है तथा सव मिलकर प्राथमिक उपचार करते हैं ।)

रहमान (कराहते हुए धीरे-धीरे) कौन अब्दुल्ला ! हाँ ··पानी··· पिला दे । आह·· सारी देह · छलनी·· हो गई है । ··रग-रग मे दर्द है। ·लेकिन · खुशी है · दुश्मन भाग गया। ·उसके · सारे टैंक · पडे रह गये। पता नही चन्दन और जॉन · कहाँ होगे !

चन्दन और जॉन (आगे बढ़ते हुए)—घबराओ नही। हम ये रहे।

रहमान . (उठने का उपक्रम करते हुए) अच्छा हुआ तुम आ गये। ···दुश्मन से· होशियार · रहना। (मूर्च्छा)

तिरलोक अरे, फिर बेहोश हो गये !

जॉन हमे देरी नही करनी चाहिए। तुरन्त अस्पताल पहुँचाना चाहिए। चन्दन, जरा सँभलकर ले चलना।

(रहमान को लेकर सभी का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तृतीय दृश्य

स्थान—चिकित्सालय का एक कक्ष

[रहमान कम्बल ओढे पलँग पर लेटा है। सिर खुला है। नर्स नाडी-परीक्षण कर रही है।]

रहमान (धीमे स्वर मे रुक-रुककर) ओह सिस्टर वडा दर्द है। क्या मै वचूंगा नही ? अभी तो वहुत काम·· वाकी है।···पता नही मेरे साथी· क्या हुए ? तुम्हारा ·शुक्रिया · कैसे अदा करूँ ? · वडी खिदमत· ·कर रही हो तुम !

नर्स (मन्द स्वर से) चुप रहो नायक, चुप रहो। तुम्हारे साथी बहादुरी से लड रहे है। घवराओ नही। हमे तुम पर नाज़ है। तुम्हारी खिदमत मुल्क की खिदमत है। मै इसे अपनी खुशकिस्मती मानती हूँ।

रहमान लड रहे है तो मुझे भी · अच्छा कर दो सिस्टर, अभी मेरे अरमान वाकी है। आह मै ·कुछ न · कर सका।

नर्स तुमने वह किया है जवान, जो इतिहास मे सुनहले अक्षरो मे लिखा जायगा। अकेले तुमने दुश्मन को भगाकर उसके दस टैको पर अधिकार कर लिया।

रहमान (प्रसन्नता से उठता-सा हुआ)—क्या'' यह सच है ?'' क्या'' दुश्मन'''भाग गया ?' आह'' दर्द''''' सिस्टर''' पानी'' । (मूर्च्छित होता है)

नर्स : है, मूर्च्छित हो गया ! (उच्च स्वर मे) डॉक्टर !'' '' डॉक्टर !

डॉक्टर (शीघ्रता से प्रवेश करते हुए) क्या हुआ ? बेहोश हो गया ?

नर्स हाँ, मैंने इसे इसकी विजय की बात बताई तो खुशी से उछल पड़ा और बेहोश हो गया।

डॉक्टर (इञ्जैक्शन लगाते हुए)—बड़ा बहादुर जवान है। इतने घाव खाकर भी इसका हौसला बुलन्द है।

(रहमान की माँ और पत्नी का बच्चे सहित प्रवेश)

वृद्धा डॉक्टर, मेरा रहमान कहाँ है ? कैसा है ?

डॉक्टर, ठीक है माँ ! अभी सो रहा है।

रहमान (आँखें खोलते हुए मन्द स्वर मे)—आह'' अम्मीजान !

वृद्धा (घबराहट के साथ) क्या-हुआ मेरे लाल ?

रहमान (दर्द-भरा मन्द स्वर)—तू'' आई माँ'' आह'' बड़ा दर्द है। सहा नही' जाता।' अब मै ''बच नही ' सकता।

वृद्धा (आश्वासन देते हुए)—तुझे कोई नही मार सकता मेरे लाल ! काल भी नही। तूने वह काम किया है कि तू हमेशा जिन्दा रहेगा। मेरे दूध की लाज रखी है तूने। तुझ-सा लाल पाकर मै निहाल हो गई हूँ बेटा !

रहमान . पर'' मेरा काम ' अभी'' अधूरा है ' माँ !

मुबारक-. उछे मै पूला कलूँगा, अब्बाजान ! घवलाओ नही। दुछमन छे आपका वदला लूँगा।

रहमान वाह बेटा मुवारक वाह ! मुझे · तुझसे· यही· · उम्मीद थी। तेरी अम्मी

पत्नी (आगे बढकर उत्सुकता से)—ये रही मैं। कहो, कैसे हो ? (आँखो मे आँसू भरकर) घवराओ नही, खुदा ठीक कर देगा।

रहमान है ! तुम्हारी आँखो मे···आँसू ? चैन से मरने दो मुवारक की माँ ·चैन से।

पत्नी (आँसू पोछते हुए)—ये आँसू तो आँसू नही, मोती है। तुम्हारी वहादुरी पर निछावर होने को दिल के मान-सरोवर से निकले है। मुझे भी अपने पर फख्र है कि मेरे शौहर ने मेरे सुहाग की लाज रख ली।

रहमान (अत्यन्त मन्द तथा कम्पित स्वर मे)—तव मैं खुशी से मर सकूँगा। मेरे मुवारक को ऐसा ही ·वहादुर वनाना। मादरे वतन की · यही · पुकार है। मादरे वतन (प्राणान्त)

वृद्धा (रोती हुई)—हाय लाल, तू कहाँ गया ? देख, अभी दुश्मन का हमला जारी है। आ, तुझे फिर खुशी से लडाई पर भेजूँ। आ बेटा आ !

पत्नी (रूदन-भरा स्वर) हाय, तुम कहाँ गये ? अभी तुम्हारा मुवारक छोटा है। अभी तुम्हारा काम वहुत वाकी है। हाय, तुम क्यो चले गये ?

मुवारक क्यो लोती ऐ माँ ! मै छोता हूँ तो क्या हुआ ? दुछमन को मारने मै भी ललाई पर जाऊँगा।

(एक धडाके की ध्वनि, भारतमाता का प्रादुर्भाव)

भारतमाता—मुझे रहमान और मुवारक जैसे वेटो पर अभिमान

है। मेरा विश्वास है कि अब कोई मेरा बाल भी बाँका नही कर सकता। मेरे सभी सपूत हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-सिख-पारसी मेरे लिए प्राण हथेली पर लिये हुए है। मेरे सपूतो की माताये और पत्नियाँ जब ऐसी त्यागमयी है, तो दुश्मन मेरा कुछ नही कर सकता। मेरे सपूतो की जय! जय!! जय!!!

पटाक्षेप

विषामृत

पात्र

जुझारसिंह	ओरछा-नरेश
हरदौल	जुझारसिंह के अनुज
रानी	जुझारसिंह की पत्नी

रधिया दासी

प्रथम दृश्य

स्थान—राजकीय शयनागार

समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

[सुसज्जित पर्यंक, जिस पर रेशमी आस्तरण एव विभिन्न प्रकार के बेल-बूटो से चित्रित तकिये लगे है। गवाक्षो एव द्वार पर झिलमिलाते हुए आकर्षक पर्दे पडे है। दो कोनो मे दीप-शलाकायें प्रज्वलित हो रही है, जिनसे अगरु-धूम निकलकर वायु-मंडल को सुवासित बना रहा है। दीवारो पर विविध भाव-भंगिमाओ एवं शृङ्गारिक मुद्राओ से पूर्ण युग्म-चित्र लगे है। पर्यक पर चिन्तित मुद्रा मे महाराज जुझारसिह आसीन हैं—प्रौढावस्था, लम्बी-लम्बी मूँछें, राजसी वस्त्र एवं सिर पर उष्णीष]

जुझारसिह—(पर्यंक से उतरकर शयनकक्ष मे टहलते हुए क्रोध एव व्यग्य से)—राजा हरदौल की जय! राजा हरदौल की जय!! मेरे रहते हुए राजा हरदौल की जय! थोडे दिन के लिए मै दक्षिण क्या चला गया, जैसे उसे खुलकर खेलने की छूट मिल गई। मेरी प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार जमा लिया। यहाँ तक कि प्रजा भी उसी की जयजयकार करने लगी। मेरी भी जय-जयकार की, लेकिन ऐसा लगता था, जैसे मेरा नाम भूल से ही निकल गया हो। क्या जादू किया है उसने प्रजा पर! यदि यही दशा रही तो एक दिन वह सचमुच ओरछे का राजा बन बैठेगा।

यवनो से भी अधिक भारी पडेगा तब, इसलिए मार्ग के इस कॉटे को उखाड फेकना ही चाहिए। इस विष-दन्त को तोड ही डालना चाहिए। (कुछ रुककर) और विनम्रता तथा शिष्टाचार का प्रदर्शन भी कैसा सीख गया है! धूर्त, एक ओर तो कैसा झुक-झुककर प्रणाम करता हुआ मुख से चाटुकारी की बाते कर रहा था, दूसरी ओर मेरी ही कृपाण को कमर मे बाँधे हुए मूँछो पर ताव देकर शेखी बघार रहा था। (आवेश मे) मेरी कृपाण कैसे पहुँच गई उस पर! ओह, रानी! तू भी कितनी छली है! चलते समय ऑखो से कैसे ऑसू ढुलकाती थी! कहती थी, 'नाथ, आपके बिना चैन नही पड़ेगा, कैसे जीवित रहूँगी? अपनी स्मृति-स्वरूप इस कृपाण को ही छोड जाइए, मै इसकी पूजा किया करूँगी।' (आह भरकर) अच्छी पूजा की! कुलटा! मेरे नाम को तूने कलकित कर दिया! जिसे मै अपने प्राणो से भी प्रिय समझता था, जिसके प्रति मेरा अटूट विश्वास था, वही चढते हुए यौवन को देखकर फिसल गई। हाय नारी! तेरा क्या विश्वास? सोचती होगी, अब क्या जुझारसिह यवनो को जीतकर, लौटकर आ सकता है? तभी तो कृपाण सौप दी अपने चहेते को! वह भी कितनी छलनामयी बन गई है! कैसी कृत्रिम प्रसन्नता दिखाती हुई मेरी आरती करने आई थी! किन्तु क्या हृदय की सचाई कही छिपती है? आखिर भोजन के समय रहस्य सामने आ ही गया। तभी तो मुझे छोटे थाल मे और हरदौल को बडे थाल मे भोजन परोसा गया। यह अपमान! खून का-सा घूँट पीकर रह गया मै। लेकिन अब दोनो का ही नाम-निशान मिटाना होगा, तभी चैन पडेगा। (टहलने की गति तीव्र हो जाती है) विषधरो

को पनपने नही देना चाहिए, पता नही कब क्या षड्यन्त्र करे।

(बाहर से रुनभुन की ध्वनि के साथ पद-चाप सुनाई पडती है, जुझारसिंह सयत होकर पर्यंक पर आसीन हो जाते हैं)

रानी · (प्रवेश करते हुए)—नाथ ! अभी आप बैठे हुए दासी की प्रतीक्षा ही कर रहे हैं ?

जुझारसिंह (व्यग्य से) अवकाश तो मिल गया हरदौल की सेवा से ! महाराजाधिराज से आज्ञा लेकर तो आई हो न ?

रानी (आश्चर्य से)—आज्ञा ? किसकी आज्ञा, नाथ ? आज आप कैसी बाते कर रहे है ? दासी को आने मे विलम्ब हुआ, क्षमा करे। लेकिन

जुझारसिंह लेकिन क्या ?

रानी लेकिन नाथ ! सभी के सोने से पूर्व ही मै कैसे आ सकती थी ? बार-बार चाहते हुए भी लज्जावश...

जुझारसिंह (बीच ही मे)—लज्जावश ! बडी आई लजवन्ती ! अब मे कुछ बहाने नही सुनना चाहता। अब यह छलना अधिक दिनो नही चल सकती।

रानी—छलना ! कैसी छलना ?

जुझारसिंह (क्रोध से)—जान-बूझकर मुझे पागल बनाती हो ? क्या निरा बुद्धू ही समझ लिया है ?

रानी (सहमती हुई)—आज आपको यह क्या हो गया है नाथ ? मै कुछ नही समझी।

जुझारसिंह हॉ-हॉ, तुम क्यो समझोगी। तुम्हे तो दूसरा मद ढचा हुआ है न ?

रानी मद ! कैसा मद ? पहेली न वुझाइये, स्वामी ! स्पष्ट कहिए।

जुझारसिह . पहेली ? तुम्हारे लिए नही, सचमुच मेरे लिए पहेली है ! (आह भरकर) मैं नही जानता था कि नारी एक पहेली है। जिसे मैं अपने हृदय को देवी समझता था, पातिव्रत की साक्षात् प्रतिमा समझता था, वही वही आज

रानी नाथ ! आज आप यह क्या सोच रहे है ? मै नही जानती थी कि दासी का तनिक विलम्व इतना वडा अनर्थ करेगा ?

जुझारसिह (घृणा से)—अव अधिक मुझे न वनाओ ! तुम्हे अव हमारी आवश्यकता ही क्या ? हमारा यौवन तो अव ढल रहा है न ! तुम्हे नया यौवन चाहिए, नया सौन्दर्य चाहिए, नई केलि-क्रीडाये चाहिए और वे तुम्हे प्राप्त है। जिसे मैने शिशुवत् प्यार दिया था, जिसकी प्रत्येक आकाक्षा की पूर्ति की थी और इतना वडा किया था, वही आस्तीन का साँप निकलेगा, मे यह नही जानता था !

रानी समझी नाथ, समझी। किन्तु, किसने यह विष का वीज वोया है आपके हृदय मे ? कौन हमारे घर मे आग लगाना चाहता है ? कौन ओरछे की शक्ति को मिटाने का स्वप्न देख रहा है ?

जुझारसिह इन मद-भरी वातो के प्रभाव मे मै अव नही आ सकता। तुम्हारा और हरदौल का आचरण ही वता रहा है मुझे सव-कुछ।

रानी : (कानो पर हाथ रखकर)—हाय, नाथ ! मै यह क्या सुन

रही हूँ ? हरदौल को मै पुत्रवत् मानती हूँ ।

जुझारसिह (उपहास के साथ)—वडा अच्छा सम्बन्ध है यह ! पाप-कर्म को छिपाने का इससे उत्तम उपाय और क्या हो सकता है ! वाह री नारी !

रानी (कोप से)—महाराज ! यह व्यर्थ का कलक न लगाइये । क्या सीता और लक्ष्मण का उदाहरण हमारे सामने नही है ?

जुझारसिह आँखे दिखाने से कुछ नही होगा । (हँसकर) सीता और लक्ष्मण ! (उत्तेजना से) क्या सीता ने लक्ष्मण को कभी महत्त्व दिया राम से अधिक ?

रानी मैने भी कव महत्त्व दिया हरदौल को आपसे अधिक ?

जुझारसिह झूठ वोलते हुए भी लज्जा नही आती ! क्या तुमने हरदौल को वडे थाल मे भोजन नही परोसा ?

रानी . (लम्बी साँस लेकर)—हाय नाथ ! मैने तो इस पर ध्यान ही नही दिया । मुझे कुछ स्मरण भी नही है । सम्भव है, अभ्यासवश ऐसा हो गया हो । नित्य वह उसी थाल मे ही भोजन जो करता था । इतनी-सी छोटी वात का यह अर्थ ? इस भूल के लिए दासी क्षमा चाहती है ।

जुझारसिह यह छोटी भूल नही है, रानी ! मर्यादा का प्रश्न है । मुझे जान-बूझकर नीचा दिखाया गया है ।

रानी नाथ ! मै सौगन्ध खाती हूँ, जो मुझे इसका ध्यान भी हो ।

जुझारसिह (व्यग्य से)—ठीक है, ठीक है, तुम्हे ध्यान क्यो होगा ? कह दो, वह कृपाण भी भूल से उसकी कटि मे

लटक गई होगी, जिसे बांधकर वह अपने को ओरछा-नरेश समझने की भूल करने लगा है।

रानी नाथ! वह कृपाण उसे पुरस्कार मे दी गई है, जिसे वह अपना गौरव समझता है और जिसके वल पर उसने अपने को आपका सेवक मानते हुए ओरछा की मान-मर्यादा की रक्षा की है।

जुझारसिंह उसकी प्रशंसा के पुल बांधकर जले पर नमक न छिड़को! देख ली तुम्हारी पतिभक्ति और उसकी भ्रातृ-भक्ति।

रानी आपको भ्रम हो गया है, स्वामी!

जुझारसिंह भ्रम! जानती हो, क्षत्रिय की कृपाण का महत्त्व क्या है? क्षत्रिय की कृपाण उसकी आन की ही प्रतीक होती है। उसी के साथ परिणय भी किया जाता रहा है।

रानी जानती हूँ, नाथ! तभी तो मैने जाते समय आपसे आपकी कृपाण ले ली थी, पूजा करने के लिए।

जुझारसिंह मुझे छलने का उत्तम वहाना था यह! (व्यंग्य से) वड़ी पूजा की! अहा, क्या कहने?

रानी नाथ! पूजा में एक दिन का भी व्यवधान नही पड़ा। आज भी प्रात आपके आने से पूर्व मैने उसकी पूजा की है।

जुझारसिंह तुमने पूजा भी की है और वह हरदौल की कटि मे भी लटक रही है! यह कैसे सम्भव है?

रानी उसके शौर्य के पुरस्कार-स्वरूप उसे प्रदान करते हुए

भी आपके आने तक पूजा का अधिकार मैने नही छोडा। मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूँ। क्या मुझे पुरस्कार देने का भी अधिकार नही ? आप होते नाथ, तो आप भी उसे यह पुरस्कार अवश्य देते। मैंने सोचा, आपके आने पर आपकी स्वीकृति ले लूंगी, किन्तु आपने इतना अवसर ही नही दिया।

जुझारसिह क्या शौर्य दिखाया है उसने, मै भी तो सुनूं !

रानी · दिल्ली के यवन लडाकू कादिर खॉ ने ओरछा के वीरो को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा। उसने ओरछा के गौरव कालदेव और भालदेव को, जिन पर हमे वडा अभिमान था, तलवार के घाट उतार दिया। वीर हरदौल ने कहा, 'भाभी ! अपनी मातृभूमि की प्रतिष्ठा दॉव पर लगी हुई है, भैया की कृपाण द्वारा ही मै उसकी रक्षा कर सकता हूँ।' मैने उसे वहुत समझाया, किन्तु उसने कहा, 'जिस आन के लिए क्षत्रिय हँसते-हँसते अपने प्राणो को भो निछावर कर देते है, जिसके लिए हमारे दो-दो वीरो ने अपना वलिदान कर दिया, उस आन के लिए तुम भैया की कृपाण भी मुझे नही दे सकती ?' तो मैं अपने को रोक न सकी। देश की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, नाथ ! आप भो तो उसी के लिए जूझते रहे है, फिर मैने क्या अपराव किया ? आपकी कृपाण से ही उसने मातृभूमि की मान-मर्यादा को वचा लिया।

जुझारसिह लेकिन इसका यह अर्थ तो नही है कि उसे वह कृपाण सदा के लिए दे दी जाती ?

रानी : उसकी वीरता के अभिमान से मै फूल गई, नाथ ! आप

होते, तो आपको भी गर्व होता उसकी वीरता देखकर। मैंने कहा—'वीर हरदौल ! तुम्हे इसका क्या पुरस्कार चाहिए।' उसने वही कृपाण माँग ली। मै कैसे मना करती नाथ !

जुझारसिह (गहरी साँस लेकर)—हाँ, तुम कैसे मना करती ? उसकी वीरता ने ही तो तुम्हे लुभा लिया ! (उत्तेजित होकर) जानती हो, अपना शस्त्र किसी को सौपना, उसकी आधीनता स्वीकार करना है।

रानी (कातर होकर)—यह शस्त्र सौपना कहाँ, हुआ नाथ ! यह तो उसका पुरस्कार है, और वह सहोदर है, आपका आज्ञाकारी सेवक !

जुझारसिह (क्रोध से)—अधिक गुणगान न करो उसका। वह मेरा प्रतिद्वन्द्वी वन रहा है। जव प्रजा उसकी जय-जयकार कर रही थी, तो वह अभिमान से फूला नही समा रहा था। अपनी मूँछो पर ताव दिया था उसने मुझे देखकर।

रानी तो वह और किसके सामने ताव देता मूँछो पर ? वह आपसे प्रोत्साहन चाहता था, प्रशसा चाहता था। वालक कोई वडा काम करता है तो अपने अग्रजो के सामने फूल उठता है, नाथ ! क्या उसने आपके चरण स्पर्श नही किये ?

जुझारसिह (व्यग से)—जुझारसिह इतना मूर्ख नही है, वह सव समझता है। (उत्तेजना से) यह उसकी वनावट थी, छल था, ताकि मै धोखे मे भूला रहूँ और वह अवसर पाकर तुम्हारी सहायता से मुझे वन्दी वना ले।

रानी · (दुःख स)—हाय नाथ ! आप यह क्या सोचते है ? किस शत्रु ने आपके कान भरे है ?

जुझारसिह . (क्रोध से)—हाँ, शत्रु तो कहोगी ही उसे। समय से पूर्व ही जो सचेत हो गया मैं। कुलटा, चली जा मेरे सामने से !

रानी (आँखो मे आंसू भरकर)—नाथ ! भगवान् से डरिये ! व्यर्थ का कलक न लगाइए !

जुझारसिह—कलक ! भगवान् ! !···तो तुम कलकिनी नही हो ? प्रमाण ?

रानी प्रमाण ! मै प्रमाण देने को प्रस्तुत हूँ, स्वामी ! जिस अग्नि देवता को साक्षी देकर आपका वरण किया था, उन्ही की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मै हरदोल को अपने पुत्र के समान समझती हूँ।

जुझारसिह . सौगन्ध सौगन्ध सदा झूठे ही खाया करते है। सच्चे व्यक्ति के लिए सौगन्ध नही होती।

रानी तो आपको कैसे विश्वास होगा, नाथ ?

जुझारसिह रक्त से।

रानी (आश्चर्य स) रक्त से ! मै रक्त देने के लिए प्रस्तुत हू, स्वामी ! मुझ अपन प्राण देने मे भी सकोच नहा हागा।

जुझारसिह मुझे तुम्हारे नही, हरदौल के प्राण चाहिए।

रानी हरदौल के ? (स्तम्भित रह जाती है)

जुझारसिह क्यो ? स्तम्भित कैसे रह गई ? प्राण कैसे सूख गये ? (व्यग से) ठीक है, प्रेमी अपने प्राणो से भी प्रिय होता है।

रानी (चौंकती-सी हुई)—नाथ ! हरदौल भोला है, निरीह है, अग्नि-सा पवित्र है। आपका सन्देह तो मुझ पर है। मैं अपने प्राण देने को तत्पर हूँ।

जुझारसिंह अपने प्राण देने से तुम निष्कलंक नहीं हो जाओगी। तब तो तुम अपने कलंक को प्रमाणित ही करोगी।

रानी तो फिर आप स्वतन्त्र हैं, नाथ ! कीजिए अपने सहोदर की हत्या। काटिये उसी वृक्ष को जिसे अब तक स्वयं अपने हाथों से सींचा था।

जुझारसिंह हत्या मैं नहीं करूँगा, वह तुम्हें करनी होगी।

रानी (चौंकती-सी आश्चर्यचकित होकर)—मुझे ?

जुझारसिंह हाँ तुम्हें, तुम्हें उसे विष देना होगा।

रानी (आह भरकर)—मुझे विष देना होगा ! नाथ

(सिर जैसे घूमता है, हाथों से सिर थामकर बैठ जाती है)

जुझारसिंह (व्यंग से)—क्यों ? घबरा क्यों गई ? क्या प्यार की हत्या हो रही है ?

रानी हाँ, नाथ ! प्यार की हत्या हो रही है। माँ की ममता की हत्या हो रही है।

जुझारसिंह (क्रोध से)—यह प्रलाप मैं नहीं सुनना चाहता। तुम सती हो न ?

रानी (अत्यन्त मन्द स्वर से)—नाथ ! मैं अपने मुँह से क्या

जुझार...

...अपने पति की आज्ञा का पालन करना

ही होगा ! उसे विष देना ही होगा !

रानी (अत्यन्त क्षीण स्वर मे)—दूँगी नाथ ! अपने पातिव्रत पर मातृत्व का वलिदान चढाऊँगी ।

जुझारसिंह तो फिर ठीक है ।

(पट-परिवर्तन)

द्वितीय दृश्य

स्थान—पाकशाला

समय—मध्याह्न

[विशाल कक्ष, जिसके आधे भाग मे पाकशाला एव आधे भाग मे भोजनालय। पाकशाला वाले भाग मे एक ओर चूल्हा, जिसमे राख से आवृत अग्निकण चमक रहे हैं, उसके ऊपर एक पात्र रखा है। सामने दीवार की अलमारी मे स्वर्ण एव रौप्य के विविध प्रकार के पात्र चमक रहे हैं। चूल्हे के सामने पात्रो मे अनेक भोज्य पदार्थ बने हुए रखे हैं। रानी चूल्हे के समीप बैठी हुई स्वर्ण-थाल मे विभिन्न भोज्य पदार्थों की कटोरियाँ रखकर भोजन परोस रही है। भोजनालय वाले भाग मे एक ओर बैठने की चौकी रेशमी आस्तरण से ढकी हुई रखी है। उसी के सामने उससे कुछ ऊँची रत्नजटित चौकी थाल रखने के लिए है, जिसके पास ही दूसरी रौप्य-मण्डित चौकी पर जल से पूर्ण ताम्र-पात्र एव स्वर्ण का गिलास रखा है।]

रानी (भोजन परोसती हुई) आह, कितना कलुषित हृदय है! सचमुच ईर्ष्या अन्धी होती है। वह विवेक की आँखो को बन्द कर देती है। कुछ भी तो नही सोचा! कानो का ऐसा कच्चापन भी क्या? मेरी हर बात का उल्टा ही अर्थ लगाया। बेचारे हरदौल के उत्साह-भरे उल्लासपूर्ण वीर-

दर्प का भी क्या अर्थ लगाया ? जब मन कलुषित हो चुका हो तो चारो ओर दोष-ही-दोष दिखाई पडते है। (आह भरकर) अब क्या हो ? ओह, कितने प्यार से भाभी-भाभी कहता है। मेरे आदेश के बिना कभी कुछ नही किया। मैंने कितनी बार कहा, 'तुम समझदार हो, जो चाहो, करो।' तो कहता था, 'भैया घर नही है, तुम तो हो! तुम्ही इस राज्य की स्वामिनी हो। मै तुम्हारे आदेश बिना कुछ कैसे करूँ ?' हाय! उसी के प्रति यह दुर्भावना! (कुछ क्षण रुककर आह भरती हुई) कादिर खाँ को मारकर किस उल्लास से मेरे चरणो से लिपट गया था! क्षत-विक्षत होकर भी कितना प्रसन्न था! कह रहा था, 'तुम्हारे आशीर्वाद और भैया के चरणो के प्रताप से मै यह सब-कुछ कर पाया, नही तो मुझमे क्या शक्ति थी ?' हाय, उसी के प्रति ऐसी ईर्ष्या! (आँसू पोछकर) राज्य, तुझे धिक्कार है! तू भाई-भाई, पिता-पुत्र किसी के सम्बन्ध को भी नही देख सकता। हाय रे स्वार्थ! (ठंडी आह भरकर कुछ देर बाद) ओह, उसे क्या पता, क्या-क्या हो रहा है! दासी से सन्देश पाकर हँसता-किलकता हुआ आयेगा। ओह, जिसे प्यार और स्नेह के साथ खिलाती रही, उसे ही विष देना होगा ? पृथ्वी, तू इस पाप को देखकर फट क्यो नही जाती जिससे मै तुझमे समा जाऊँ ? हाय मेरे प्राण, तुम कितने पापी हो, जो अभी भी इस शरीर को नही छोडते! आह, मै मर भी जाऊँ, तो क्या उनका सन्देह दूर होगा ? किस निष्ठुरता से कह रहे थे—'तेरे प्राण देने से तो कलक और भी प्रमाणित हो जायगा।' और चारा भी क्या है! हाय नारी, तू कितनी विवश है! तेरा

सतीत्व कैसा छुईमुई-सा है! किसी की ओर तू स्नेह से देख भी नही सकती। ओह, तेरा जन्म क्या अविश्वास के लिए ही हुआ है? (पद-चाप सुनाई देती है; ठडी साँस लेकर) ओह, आ रहा है वह। हृदय! तू अब पाषाण हो जा।

(आँखें पोंछकर अपने को सयत करती है।)

हरदौल (हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी, गौर-वर्ण, राजसी वेशभूषा धारण किए हुए युवक प्रवेश करते हुए)—लाओ भाभी, वडी भूख लगी है। (एक ही आसन देखकर चौंकते हुए) है! आज एक ही आसन क्यो? भैया कहाँ है?

रानी (मन्द स्वर मे)—वे भोजन कर चुके।

हरदौल (आश्चर्य से)—कर चुके? आज उन्होने अकेले ही भोजन क्यों किया? ऐसा तो कभी नही हुआ?

रानी आज उन्हे कुछ शीघ्रता थी, भैया! सम्भव है कोई आवश्यक कार्य हो! तुम बैठो! देखो आज मैने तुम्हारे लिए कितनी चीजे वनाई हैं।

हरदौल (बैठते हुए)—सो तो देख ही रहा हूँ। लेकिन भैया के विना उनमे मुझे स्वाद ही कैसे आएगा?

रानी आयेगा कैसे नही आयेगा! तुम तो कहा करते हो, तुम्हारे हाथ का भोजन अमृत होता है।

(गहरी साँस लेती है)

हरदौल (ध्यान से देखते हुए)—हाँ, अमृत तो होता ही है। लेकिन तुम यो आह क्यो भर रही हो? अरे! तुम्हारी आँखे तो लाल हो रही है? अरे, यह क्या? आँसू!

रानी (आँसू पोछकर, थाल चौकी पर रखते हुए)—कुछ नही, भैया, कुछ नही! तुम भोजन करो।

हरदौल . नही, कुछ बात अवश्य है। जब तक नही बताओगी, मै एक ग्रास भी मुँह मे नही दूँगा।

रानी नही भैया, कुछ नही है, तुम भोजन करो।

हरदौल (मचलता-सा हुआ)—नही करूँगा, नही करूँगा! जब तक तुम बात नही बताओगी, तब तक मै भोजन नही करूँगा। क्या भैया ने कुछ कहा है ?

(रानी मूक रह जाती है)

हरदौल (आग्रह से)--कहो, चुप क्यो हो ?

रानी . (भरे हुए कठ से)—हाँ।

हरदौल क्या कहा है भैया ने ?

रानी (सिसकती हुई)—रहने दो हरदौल! मत पूछो!

हरदौल फिर भी, बताओ तो!

रानी (रुँधे हुए कठ से)—उन्होने मुझे और तुम्हे कलक लगाया है।

हरदौल (आश्चर्य से)—कलक लगाया है ? क्या कलक लगाया है ?

रानी उन्होने मेरे सतीत्व पर सन्देह किया है, मुझे कुलटा कहा है।

हरदौल (उत्तेजना से)—है, उनका यह साहस! मेरी सीता-सी सती भाभी पर कलक! पूछता हूँ, उनको यह शका क्यो हुई ? क्या देखा उन्होने ?

(उठने का उपक्रम करता है)

रानी (हाथ पकडकर बिठाते हुए)—नही भैया, उनसे पूछने से कुछ नही होगा। और भी अनिष्ट हो जायगा। मै सारे प्रयत्न करके थक गई। उन्हे विश्वास ही नही होता।

हरदौल. विश्वास नही होता ? क्या किसी भी प्रकार विश्वास हो सकता है ? क्या मै इसके लिए कुछ नही कर सकता ?

रानी: (आह भरकर)—हो सकता है। और उसी विश्वास के लिए मै अभागिनी वह करने जा रही हूँ, जो एक राक्षसी भी नही करेगी।

हरदौल (चौंकते हुए)—है, क्या करने जा रही हो ?

रानी (रोते हुए)—मत सुनो, बेटा हरदौल, मत सुनो ! अच्छा है, तुम न सुनो। मैं पापिनी जो कुछ भी कर रही हूँ, उसे करने दो।

हरदौल यह तुम क्या कह रही हो ? अभागिनी राक्षसी पापिनी !

रानी हाँ मैं अभागिनी हूँ, राक्षसी हूँ, पापिनी हूँ।

हरदौल (आग्रहपूर्वक करुण स्वर से)—भाभी, मुझे भी तो कुछ बताओ !

रानी (रोकर)—कैसे बताऊँ ? यदि बता दूं तो [illegible]णित न बाधा पडे और फिर मैं अपने को [illegible] कर सकूँ।

[illegible] चरणो की सौगन्ध खाकर कहता

हरदौल बाधा ! नहीं पडेगी। मै तुम्हे सती साबित करने मे [illegible] प्राणो की बाजी लगा दूँगा।

रानी तो सुनो ! मै तुम्हे विष दे रही हूँ।

हरदौल (आश्चर्य से)—विष !

रानी ! हाँ, विष ! तुम्हारे भैया ने कहा है कि यदि तुम सच-मुच सती हो, हरदौल से तुम्हारा कोई अवैध सम्बन्ध नही

है, तो तुम्हे उसे विष देना होगा।

हरदौल (उत्साह से)—भैया की यह इच्छा है? तब तो भाभी वह विष नही, मेरे लिए अमृत होगा। तुम्हारे सतीत्व के लिए मेरे प्राणो का वलिदान हो, इससे अधिक गौरव मेरे लिए क्या होगा?

रानी (गहरी सॉस लेते हुए)—हरदौल! वेटा!

हरदौल. हॉ मॉ, मेरे लिए यह अभिमान का विषय होगा। अनेक क्षत्रियो ने अपनी वहिन और माताओ के सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणो की आहुतियॉ दी है। आज भाभी के सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए मेरे प्राण काम आ रहे है। इससे अधिक मेरा सौभाग्य क्या होगा?

रानी (छाती पर हाथ रखकर)—ओह हृदय, तू फट क्यो नही जाता?

हरदौल. भाभी, यह दु खी होने का समय नही है। यह तो हर्ष का विषय है। लाओ, आज तो अपने हाथ से खिलाओ!

रानी क्या कहते हो, हरदौल! हाथ से खिलाऊँ?

हरद०. सौभाग्य मॉ! आज अपने हाथ से खिलाओ। ऐसा विप भी मेरे लिए कब मिलेगा? तुम्हारे हाथ का है। आज यह विष भी अमृत हो जायेगा?

रानी नही! अब मुझे विल्कुल पापाणी तो न

हरदौल नही, आज तो तुम्हे खिलाना ही होगा। समझ छोटे मुन्ने को खिला रही हो। खिलाना ही होगा।

(रानी का हाथ पकडकर थाल की ओर करता है और अपना मुँह खोल देता है। रानी ऑसू वहाती हुई उसे खिलाती है)

हरदौल : (भोजन करते-करते लड़खड़ाती हुई ध्वनि से)—भाभी माँ · भोजन तो हो गया। सचमुच वडा स्वाद आया। भैया को बुलाओ ! ·· अन्तिम समय उनकी चरण-धूलि तो ले लूँ ! (आँखें बन्द करता है)

रानी (सँभालते हुए एव दासी को पुकारती हुई)—रधिया !

रधिया . (प्रवेश करके) आज्ञा महारानी !

रानी जा, महाराज से कह—रानी ने उनकी आज्ञा का पालन कर दिया। हरदौल उनके अन्तिम दर्शन की प्रार्थना करता है।

(दासी का प्रस्थान, रानी हरदौल को सँभालकर वहीं लिटा देती है)

रानी (रोती हुई) हरदौल ! भैया ! क्षमा करना इस पापिनी को। · सचमुच मै कलकिनी हूँ, डायन हूँ

हरदौल : (क्षीण स्वर मे रानी के मुख की ओर हाथ करते हुए)—न ··न भाभी, यह मत कहो आज मैं· ·वडा · सौभाग्यशाली हूँ। ·रोती क्यो हो ? मै शीघ्र तुम्हारी कोख से ही·· जन्म लेकर · आऊँगा। तव तो कोई कुछ नही कहेगा।

(जुझारसिंह का प्रवेश)

भैया ! · समीप आओ। अपनी· चरण-रज तो लेने दो ! (चरणो की ओर हाथ बढाते हुए) मै जा रहा हूँ। मनुष्य · मरते समय · असत्य नही वोलता। भाभी, अग्नि जैसी · पवित्र,·· गगा जैसी निर्मल और और सीता जैसी ··सती है।· उन पर·· विश्वास करना।··· मैं तो···जा रहा हूँ।·· लेकिन·· शत्रु · चारो ओर···मँडरा रहे है।· मातृ-भूमि की· रक्षा करना। भगवान करे ·

आप अमर रहे और आपका यह राज्य सदा आपके साथ रहे। भैया भैया हा राम राम!

(प्राण-विसर्जन)

जुझारसिंह (सिर के पास बैठकर रोते हुए)—हरदौल! भैया हरदौल! हाय! यह मैंने क्या किया! आह, मैं कितना पापी हूँ?

(रानी सिर पीटकर उसे अंक में भर लेती है)

पटाक्षेप

ताशकन्द की वह रात

पात्र

स्व० लालबहादुर शास्त्री	भारत के प्रधान मन्त्री
रामनाथ	शास्त्री जी का निजी सेवक
डॉ० आर० एन० चुग	शास्त्री जी के निजी डॉक्टर

ः वक, रूसी डॉक्टर

स्थान—ताशकन्द मे एक कक्ष

समय—रात्रि के दस बजे

[एक विशाल कक्ष आधुनिक साज-सज्जा से युक्त ; दीवारो पर कुछ चित्र जिनमे से कुछ प्राकृतिक दृश्यो के है, कुछ रूसी नेताओ के। कक्ष के मध्य मे एक छोटी-सी गोल मेज, जिसके एक ओर सोफा तथा तीन ओर कुर्सियाँ पडी हैं। कक्ष के एक कोने मे छोटी-सी मेज पर टेलीफोन लगा है। उसी कक्ष से लगा हुआ शयन-कक्ष है, जिसके द्वार पर पर्दा पडा है। सोफे पर भारत के प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री अधलेटी स्थिति मे है। उनके मुख पर उदासीनता एव थकावट स्पष्ट झलकती है]

शास्त्री जी (चिन्तित मुद्रा से)—चलो, यह तो हो गया। (कुछ देर बाद) कोसीगिन कितने प्रसन्न थे! (आह भरकर व्यग्य से) वे प्रसन्न क्यो नही होगे? उन्हे तो अपने प्रयत्नो मे सफलता मिल ही गई। उनकी भूमि पर उनकी दृष्टि मे एक वहुत वडा काम हो गया। (कुछ सोचकर) पर सच पूछा जाय तो यह मेरी या अय्यूव साहब की नही, उन्ही की विजय है। तभी तो फूले नही समा रहे थे! और अय्यूव? वे भी कितने खुश थे! (गहरी साँस लेकर) उनका खुश होना भी ठीक ही था। उन्हे तो मुँह-माँगी मुराद मिल गई। उनका क्या गया! उन्हे तो अपने हारे हुए प्रदेश ज्यो-के-त्यो मिल गए। (कुछ देर बाद) ऐसा लगता था, जैसे वे

दोनो मेरा उपहास उडा रहे हो। ठीक ही है। उपहास क्यो नही करेंगे ? हाय री विडम्बना ! कितना मूर्ख समझा है उन्होने ? कहने को तो उन्होने हमारी बात मान ली कि हम कश्मीर-समस्या पर बात भी नही करेगे और कश्मीर से ही अंग हाजीपीर दर्रा, उडी, पुछ, कारगिल और टिथवाल को वापस लेने की स्वीकृति भी करा ली (उच्छ्वास के साथ) ओह, कितना बडा व्यग्य है ! एक ओर हम पाकिस्तान-अधिकृत कश्मीर को भी अपना ही कहते है, पाकिस्तान को आक्रामक मानते है और दूसरी ओर अपने ही जीते हुए प्रदेश लौटाने की भी स्वीकृति दे दी। (निढाल होकर आंख बन्द कर लेते है। थोडी देर बाद जैसे सचेत होकर) हमारे साथी कहते है, हम अपना सारा ही कश्मीर लेगे, लेकिन शान्ति के साथ। हमारा देश गौतम और गाधी का देश है। (आह भरकर) गौतम और गाधी का देश !...लेकिन क्या गौतम और गाधी को हमने समझा है ? क्या उन-जैसा आत्मबल हममे है ? गाधी जी की अहिसा और शान्ति का क्या यही अर्थ है ? फिर हमारा देश समुद्रगुप्त, पृथ्वीराज, प्रताप और शिवाजी का भी तो देश है ! हम उन्हे क्यो भूल जाते है ? पर...परन्तु क्या करे ! इसके अतिरिक्त चारा ही क्या था ? सुरक्षा परिषद् मे यदि पाकिस्तान पुन. कश्मीर का प्रश्न उठाता, तो हमे बडी कठिनाई का सामना करना पडता। रूस ने वीटो के द्वारा कश्मीर-समस्या में हमारी कितनी सहायता की है ? क्या वह फिर हमारा साथ देता ? हाय री विवशता ! (आह भरकर) फिर भी क्या विश्वास कि पाकिस्तान इस घोषणा पर अमल करेगा ? उसका क्या ठिकाना ! कल ही की तो

बात है, एक ओर वह हमसे कच्छ के रन के सम्बन्ध मे समझौता-वार्ता कर रहा था, दूसरी ओर कश्मीर में घुसपैठिये उतारते-उतारते आक्रमण भी कर दिया । फिर भी यदि वह ऐसा करे तो क्या भरोसा ? (कुछ सोचकर) क्या रूस उसे रोकेगा ? (आह के साथ) क्या विश्वास किसी का! अमेरिका भी हमारा कैसा मित्र बनता था ? पाकिस्तान को हथियार देते समय उसने कहा था कि उनका प्रयोग भारत के विरुद्ध नही होगा, किन्तु क्या वह रोक सका ? हमने आपत्ति की तो वह बगले झाँकने लगा। चीन ने भी पंचशील के सिद्धान्त पर हस्ताक्षर किये थे, क्या वह उस पर कायम रहा ? फिर रूस का भी कैसे भरोसा किया जाय ? वह भी तो बदलता हुआ दिखाई देता है। जब वह समूचे कश्मीर को भारत का एक अग मानता है, तो उसने हमें कश्मीर के जीते हुए भाग लौटाने पर विवश क्यो किया ? (गहरी साँस लेकर) हाय री हमारी दुर्बल विदेश-नीति! बडा अभिमान था हमे अपनी विदेश-नीति का। नेहरूजी ने सदा इसका उज्ज्वल पक्ष ही हमारे सामने रखा था। लेकिन अब मै अनुभव करता हूँ कि वह कितनी खोखली है! शक्ति और साधनहीन होकर भी हम शान्ति और तटस्थता की बाते करते है, कितना उपहासास्पद है ? (अत्यन्त दीर्घ नि:श्वास के साथ) काश, हमने अपनी आन्तरिक नीति को दृढ बनाया होता! हमारा देश धरती का देश है, हमने आकाश के सपने देखे। विदेशी पूंजी से बडे-बडे उद्योगो मे धन की होली जलाई। यदि हम अपनी धरती की पूजा करते, तो वह सोना उगलती। उससे हम अपने उद्योगो का विकास करते, आत्म-निर्भर होते, तो

आज हमे यह दिन न देखना पडता। किसान की शक्ति से ही जवान शक्ति पाता है और जवान की शक्ति से वैदेशिक नीति बनती है। अब समझ मे आ रहा है। (चिन्ता मे डूब जाते है। कुछ देर बाद आह भरकर) पर, ऐसी स्थिति मे हो ही क्या सकता था ?......लेकिन, देश को क्या उत्तर दिया जायगा! 'हमारे जवान भी क्या सोचेगे ? क्या उनका आत्मबल क्षीण नही होगा ? (कुछ सोचकर) हमारे साथी कहते है, 'देश कुछ नही सोचेगा। हमारा देश भावना-प्रधान है, बुद्धि-प्रधान नही। हम उसकी भावना को दूसरी ओर मोड देगे, जिससे वह मुझे शान्ति का देवता समझेगा।'(आह भरकर) क्या इससे मेरी आत्मा को परितोष होगा ? हाय री भावना! भावना का भुलावा कब तक दिया जाता रहेगा ? नेहरू जी ने ही भावना मे देश को बहुत बहाया, लेकिन क्या वह सदा भावना मे ही बहता रहेगा ? इस भावना ने क्या-क्या नही किया ? देश को कितने छोटे-छोटे टुकडो मे बॉट दिया! भाषा, मजहब, फिरके, न जाने क्या-क्या सवाल उठाकर इस भावना ने देश की राष्ट्रीयता को कलंकित कर दिया, देश की एकता की जडे हिला दी। भावना के जोश मे ही तो हम जरा-जरा-सी बात पर लडते है, एक-दूसरे का खून बहाते है, राष्ट्रीय सम्पत्ति को विनष्ट करते है, जिसको देखकर दुश्मनो के हौसले बढते है। हमारी शान्ति की बात पर वे मन-ही-मन हँसते है। ओह, क्या भावना को उचित दिशा नही दी जा सकती ? हाय री भावना! पता नही अब देश किस भावना मे बहता होगा!

(सिर हथेली पर टेक लेते हैं, तभी उनका सेवक रामनाथ आता है)

रामनाथ, क्या कर रहे हो ?

रामनाथ · सामान बाँध रहा हूँ, मालिक ! सुबह ही काबुल चलना है न ?

शास्त्री जी : अरे भाई, सुबह ही सब-कुछ हो जाता। ऐसा क्या सामान है ? अच्छा देख, जरा नन्दा जी को ट्रक तो मिलाना ! फिर मेरे पास आना।

(रामनाथ फोन की ओर जाता है)

शास्त्री जी (सोफे पर बैठकर, कुहनी हत्थे पर टेककर और मस्तक पर हथेली रखकर चिन्तन मुद्रा मे बैठ जाते हैं ; कुछ क्षण बाद)—देश को मै क्या विश्वास देकर आया था ? कश्मीर की एक इच भूमि भी नही लौटाई जाएगी। ओह, क्या मैने देश के साथ विश्वासघात किया ?··· नही-नही · ऐसी परिस्थिति मे मेरे स्थान पर कोई और होता, वह भी यही करता। वाह री विवशता ! (उपहास की हँसी) शान्ति · · तटस्थता क्या मखौल है ?···कमजोर की बीवी, सबकी भौजाई ! · · क्या-क्या सब्ज बाग दिखाये जाते रहे देश को ! विदेशो मे बडी प्रतिष्ठा है ! हमारी नीति की बडी सराहना की जाती है ! सब देख लिया। आह ! ·· जब तक देश अपने पैरो पर खडा नही होगा, तब तक कुछ नही होगा। जो जैसे दबाएगा, वैसे ही दबना पडेगा। पेट भरने के लिए ताको दूसरो का मुँह, रक्षा के लिए हाथ फैलाओ दूसरो की ओर ! फिर करो बात तटस्थता की ! ···अहहह ! शान्ति चाहते है हम, शान्ति' अहहह ! (गहरी सांस लेते है), खैर, जो हो गया, वह हो गया। यदि मैं

कोसीगिन के सुझाव को स्वीकार नही करता, तो क्या होता ? युद्ध ! विनाश ! ·· रूस भी हमारी सहायता नही करता ! हम क्या करते ? हमारे सब सपने धूल मे मिल जाते। जीत होने पर भी प्रगति की ओर बढते हुए चरण रुक जाते। अब अब देश को जगाना है। जन-जन को काम मे जुटाना है। धरती की सेवा करनी है। वही हमे बल देगी, आत्म-निर्भर बनायेगी। ये बडी-बडी योजनाये, ये विशाल कारखाने क्या कर सकेगे ? जब तक किसान नही खपेगा, तब तक जवान भी क्या करेगा ? · अब उसी को उठाना होगा। तभी शक्ति बढेगी। फिर देखेगे ससार को।

(टेलीफोन की घटी बजती है, रामनाथ टेलीफोन लाकर पास रखता है)

शास्त्री जी (टेलीफोन का चोगा उठाकर)—हलो ! हाँ-हाँ, मै शास्त्री ही बोल रहा हूँ। जयहिन्द ! ··हाँ, हो ही गया। अरे, यहाँ की क्या पूछते हो ? यहाँ तो सब ठीक है। आप बताइए, आप कैसे है ? इस घोषणा की देश मे क्या प्रतिक्रिया है ? · क्या कह रहे हो, मिली-जुली प्रतिक्रिया ? क्या मतलब ? ओह ! ·· ओह · ! क्या कहते है विरोधी नेता ? (आह भरकर) ठीक है, उन्हे यह कहना ही चाहिए · और अपने साथियो के क्या विचार है ? ···(चौंककर) हैं, उनमे से भी अनेक क्षुब्ध हैं ? क्या कहते है ? ···· वहाँ आकर तो मालूम हो ही जाएगा, आप भी तो कुछ बताइये। नही-नही, आप बताइये। मुझे कोई चिन्ता नही होगी।··· (गहरी साँस लेकर) अरे भाई, जब यहाँ इतने

संघर्षों से जूझा हूँ, तो वह भी सह लूँगा। आप बताइये तो! अरे, फिर ऐसी क्या बात है जो बताई नही जा सकती? ... भाई, विशेष न सही, कुछ तो है? आप साफ-साफ क्यो नही कहते? ... नही भाई, यह तो थकान के कारण है। जानते ही है, कितना श्रम करना पड़ा है! वैसे कोई बात नही है। नही भाई, मै बिल्कुल ठीक हूँ। शान्ति का नेता? युद्ध का नेता तो मान लिया, लेकिन जनता शान्ति का नेता कैसे कहेगी? एक ओर आप कहते है—अनेक लोग क्षुब्ध है, दूसरी ओर कहते है—जनता शान्ति का नेता कहेगी। अच्छा, तो देश की अधिकाश जनता सन्तुष्ट है न इस निर्णय पर? मै कल काबुल पहुँच रहा हूँ। अगर आपकी इजाजत हो, तो वहाँ एक-दो दिन और रुक जाऊँ। नही-नही, यह तो मैने मजाक किया है। मुझे स्वय स्वदेश लौटने की चिता है। नही, और कोई बात नही। अच्छा, जयहिन्द!

(टेलीफोन रखकर निढाल होकर सोफे पर गिर जाते हैं। कुछ देर बाद घटी बजाते है और विचारमग्न हो जाते है। रामनाथ आता है)

रामनाथ- जी, मालिक!

शास्त्री जी (चौंककर)—रामनाथ, तुम आ गये। ये फोन ले जाओ और मुझे जरा पानी पिलाओ।

(फिर सोफे पर अधलेटे होकर आँखें बन्द कर लेते है। रामनाथ फोन ले जाता है। थोडी देर बाद वह पानी लेकर आता है)

रामनाथ : पानी, मालिक !

शास्त्री जी (बैठकर)—अच्छा, लाओ ! (पानी पीते हैं)

रामनाथ (गिलास हाथ मे लेकर)—क्या हुआ मालिक ? तबीयत तो ठीक है न ?

शास्त्री जी (गहरी साँस लेकर)—तबीयत ! हाँ, ठीक ही है।

रामनाथ नही मालिक, आपको जरूर कुछ तकलीफ है, क्या हुआ ? डॉक्टर बाबू को खबर करूँ मालिक ?

शास्त्री जी नही भाई, डॉक्टर बाबू क्या करेंगे ? (पुन आह भरते हैं)

रामनाथ , क्यो मालिक, आप ऐसे क्यो कर रहे है ?

शास्त्री जी कुछ नही, रामनाथ, कुछ नही। तुम क्या समझोगे ! जाओ, तुम अपना काम करो।

रामनाथ कुछ तो मालिक !

शास्त्री जी नही, रामनाथ, तुम नही समझोगे। (मन्द स्वर मे) देश के कितने जवानो ने अपने प्राणो की आहुतियाँ दी ! कितनी सुहागिनो के सिदूर पुँछे ! कितनी माताओ की गोदियाँ सूनी हुई ! ·· और और परिणाम !

(आँखें बन्द कर लेते है। एक सेवक दूध लेकर आता है)

सेवक मालिक !

शास्त्री जी (आँखें खोलकर)—क्या है ?

सेवक दूध, मालिक ! दूध पीजिए।

शास्त्री जी नही भाई, अब कुछ इच्छा नहीं है।

रामनाथ (सेवक के हाथ से दूध का गिलास लेकर)—पी लीजिए, मालिक ! बहुत थक गये हैं आप । दूध तो अच्छा ही रहेगा।

शास्त्री जी नही रामनाथ, कुछ मन नही चाहता। लगता है, दूध भी विष हो जायगा।

रामनाथ आज आप कैसी बाते करते है, मालिक ! दूध पी लीजिए। दूध से थकान दूर होगी।

शास्त्री जी नही, कुछ इच्छा नही है।

रामनाथ फिर भी दूध तो पीना ही पड़ेगा। इसमे आपकी नही, मेरी इच्छा चलेगी।

शास्त्री जी · (मुस्कराकर)—लाओ भाई, लाओ ! मुझमे इतनी हिम्मत कहाँ कि तुम्हारी इच्छा टाल सकूँ ?

(दूध पी लेते हैं, सेवक गिलास लेकर जाता है)

रामनाथ · अब आराम कीजिए, मालिक ! देखिए ग्यारह बजने को हैं।

शास्त्री जी : (गहरी सांस लेकर)—हाँ, आराम तो करना ही है। (खांसी) ओह !

रामनाथ . (चिन्ता से)—क्या हुआ मालिक ?

शास्त्री जी कुछ नही, रामनाथ, कुछ नही। तुम्हे क्या बताऊँ !

आज वह होती, तो उससे मन की बात कहकर कुछ जी हल्का करता। बडा भारी-भारी-सा जी हो रहा है।

रामनाथ फोन लगाऊँ घर के लिए मालिक ?

शास्त्री जी · (एक क्षण सोचकर)—हाँ, लगा दो, और देखो, तुम भी अब आराम करो।

रामनाथ . करूँगा मालिक! थोडा-सा काम अभी और बचा है, उसे भी कर लूँ। तब तक माता जी का फोन आ जायगा। तभी आपके साथ मैं भी आराम करूँगा।

(फोन लगाने को प्रस्थान)

शास्त्री जी : (छाती पर हाथ रखकर)—ओह, न जाने क्या हो रहा है! कुछ भी तो नही सुहाता। उसने कहा था—मैं साथ चलूँगी। पर मैं ही उसे नही लाया। सोचा था, मैं व्यस्त रहूँगा, वह अकेली यहाँ ऊब जायगी। लेकिन अब भी क्या उसका वहाँ मन लगता होगा? और मैं··· मैं किससे कहूँ अपने मन की व्यथा? कितना बडा भार है यह! वह भी अपनी मीठी बातो से सहारा देती थी मुझे इसे उठाने में। नन्दा जी ने भी तो कुछ साफ-साफ नही कहा। ···देश की जनता शान्ति-नेता कहेगी।···कितनी महंगी है यह शान्ति?···और जो लोग क्षुब्ध है, उनको कैसे शान्त किया जायगा? गोली से?···फिर कैसी है यह शान्ति? घर मे आग लगाकर पानी बाहर फेंका जायगा?

वाहरी शान्ति !·· (फिर छाती पर हाथ रखकर) ओह, क्या हो ?

(फोन की घंटी बजती है, रामनाथ फोन के पास रखता है)

शास्त्री जी (फोन उठाकर)—हलो, हाँ मै ही वोल रहा हूँ।· खुश रहो ! किशन हो क्या ? अच्छा, लाला है ? कहो, घर मे सब ठीक है न ? किशन, वहू, विटिया, वच्चे और वाहर के क्या हाल है, दिल्ली के ? है, कुछ ज्यादा अच्छे नही है ? (लम्बी साँस लेकर) क्यो क्या वात है ? अरे, कुछ भी तो ? नन्दा जी ने कुछ भी साफ नही कहा ? वे भी ऐसी ही गोलमोल वाते करते रहे ? · (झुझलाकर) तो फिर कहो न ? अरे, आने पर तो देख ही लूँगा, पर अब भी तो कुछ वताओ ! मुझे चिन्ता होगी ? वही नन्दा जी ने भी कहा, तो क्या अव मै निश्चिन्त हूँ ? अव मुझे चिन्ता नही है ? कुछ नही है, जरा-सी थकावट है। ओह, लोग प्रशसा भी वहुत कर रहे है ! पर, दूसरे लोग क्या कर रहे है ? उनकी वात पर विचार क्यो न करूँ ? क्या मै केवल उन्ही का प्रधान-मत्री हूँ, जो मेरी हाँ मे हाँ मिलाये ?· ·तो फिर मुझे तो सारे देश का ही ध्यान रखना होगा, सभी की वात सुननी पडेगी · (एक हाथ छाती पर रखकर) ओह, रहने दो। फोन जरा किशन की माँ को दो। हलो, नमस्कार ! कैसी हो ?·· (धीमे स्वर मे) मै मै तो ठीक-

ठीक हूँ।... ..कुछ नही, थकान है जरा। उसी की वजह से आवाज धीमी हो गई है। नही-नही, कुछ नही। (फिर कुछ दर्द का अनुभव) ओह नही-नही, ठीक हूँ। अरे, तुम तो व्यर्थ चिन्ता करती हो। नही भई, कुछ नही है। कहा है न, वहुत थक गया हूँ। हाँ, आराम तो करूँगा ही। वस, कल काबुल और परसो दिल्ली। हाँ, अच्छा तो नही लग रहा होगा। मै भी आज तक तो व्यस्त रहा, पर अब जरूर लगता है कि तुम होती, तो क्या अच्छा होता? कोई वात नही। हाँ, परसो तो आ ही रहा हूँ। वच्चे तो ठीक है न? और अम्मा? हाँ, याद तो करते ही होगे। हाँ, काबुल से मेवा लाऊँगा, जरूर। ठीक है अच्छा, अब आराम करो। जयहिन्द! (टेलीफ़ोन रख देते है) कितनी चिन्ता है! कहकर भी क्या करता? और भी चिन्तित होती। फिर हुआ ही क्या है मुझे? काम के भार से ऐसा होता ही है। (खाँसी आने से, अधलेटे हो जाते है) ओह, कुछ भी तो नही सुहाता। (घंटी वजाते है)

रामनाथ (प्रवेश करके)—मालिक!

शास्त्री जी सामान बँध गया न?

रामनाथ हाँ मालिक, बँध गया। थोडा-सा काम और है।

शास्त्री जी (लम्बी साँस लेकर)—देखो, वारह वजने वाले है।

बाकी काम सुबह कर लेना। अब आराम करो, फिर जल्दी उठ नही सकोगे।

रामनाथ आप भी तो अब आराम कीजिए, मालिक!

शास्त्री जी हॉ-हॉ, मै भी चलता हूँ। तुम जाओ!

रामनाथ अच्छा मालिक!

(प्रस्थान)

(शास्त्री जी भी पर्दा उठाकर शयन-कक्ष की ओर जाते है। पलँग सामने ही दिखाई देता है, उस पर लेट जाते है)

शास्त्री जी . (लेटे ही लेटे)—अपने साथी भी क्षुब्ध है· मै स्वय भी क्षुब्ध हूँ। लेकिन क्या करता? नन्दा जी ने भी तो पूरी बात नही बताई। ठीक है, कुछ लोग मुझे शान्ति का नेता कहेगे, लेकिन शेष जनता? वह विक्षुब्ध है (पीडा की अनुभूति) ओह···क्या हो?· वही ठीक है। देश मे जाने पर मालूम होगा।·क्या मालूम होगा? काले झडे, प्रदर्शन ··हमारे मित्र कहते है—आप चिन्ता न करं, सब ठीक हो जायगा। क्या ठीक हो जायगा? आँसू-गैस, लाठियाँ, डडे और फिर गोली! क्या यह सब-कुछ होगा मेरे लिए? भारत के जन-प्रिय प्रधान मन्त्री के लिए? ओह· जिस देश ने मेरी जय-जयकार की, मुझे अपनी आँखो पर बिठाया, नेहरू जी से भी अधिक सम्मान दिया, क्या मैने उसकी आशाओ पर तुषारपात नही किया? गौतम-गाधी का देश!·····शान्ति!·(फिर पीडा) आह!··(बैठ जाते है)···क्या मूल्य देकर यह शान्ति खरीदी है? (गहरी साँस लेकर) और क्या सचमुच शान्ति

हो जायगी ?···क्या पाकिस्तान अपनी हरकतो से बाज़ आयेगा ?···रस्सी जल जाने पर भी कही ऐंठ छोडती है ? कुत्ते की दुम भी कही सीधी होती है ? ·फिर मैने यह क्या किया ?··· ··अब इसी झूठी शान्ति के लिए अपने ही भाइयो का खून बहाना होगा ! · ·क्या करूँ ? कुछ समझ मे नही आता। (उठकर टहलने लगते हैं) बर्फ से ढकी वे रुपहली चोटियाँ, फूलों से भरी हुई वे वादियाँ ·जवानों का खून, विधवाओ के आँसू, अनाथो की करुण-पुकार·· ओह, क्या हुआ ! सब यो ही चला गया ? (पीडा ; छाती पर हाथ रखकर पुन पलँग पर बैठ जाते हैं) ऐसे ही अपना प्रदेश जीत-जीतकर शान्ति के नाम पर दुश्मन को लौटाते रहे, तो जवानो का आत्म-बल कैसे बढेगा ? वे अब कभी किस हौसले से लडेगे ?···अच्छा जवाब दिया उनके बलिदान का ! एक वे शहीद, जो एक-एक इंच भूमि के लिए जान पर खेल गये···और एक मैं ·जो उसी को फिर दुश्मन को सौपने के लिए तैयार हो गया। (लम्बी साँस लेकर) ··धिक्कार है मुझे ! · राणा प्रताप को चेतावनी देने के लिए पृथ्वीराज पैदा हो गये थे · मुझे कोई भी सचेत न कर सका। आह···(हृदय मे पीडा साँस की गति तीव्र हो जाती है) आह···अब मैं···देश को अपना मुँह · कैसे दिखाऊँगा ? क्या त्याग-पत्र दे दूँ ? पर उससे भी क्या होगा ? · वह तो · और भी कायरता होगी। फिर क्या हो ?·· शान्ति (कराह के साथ)·· शान्ति कहाँ ? ··अब तो शान्ति, · चिर-शान्ति में ही मिलेगी। · (खाँसी, तीव्र पीडा)···ओह, अब नहीं सहा जाता ! · आह (उठकर भागते हुए चिल्लाकर) डॉक्टर···डॉक्टर···डॉक्टर ·

(गिर जाते हैं, रामनाथ तथा एक अन्य सेवक दौड़कर आते हैं।)

रामनाथ अरे मालिक, क्या हुआ है ?

शास्त्री जी (बडी कराह के साथ)—रामनाथ ! 'अब अन्तिम समय निकट आ गया।" जल्दी 'डॉक्टर चुग को बुलाओ !

रामनाथ (दूसरे साथी की सहायता से उठाते हुए)—हाँ मालिक, बुलाता हूँ। आप पलँग पर चलिए। भगवान ठीक कर देंगे, आप चिंता न करें।

(दोनों उन्हें पलँग पर लिटाते हैं और रामनाथ तुरन्त डॉक्टर के पास दौडकर जाता है।)

शास्त्री जी : (मुख की कान्ति निष्प्रभ, पीलेपन का आभास, साँस की गति अत्यन्त तीव्र, दोनों हाथों से छाती को दबाए हुए)—आह ! अब ''नहीं'''बचूँगा।

सेवक . नहीं, ऐसा न कहिए, डॉक्टर अभी आते हैं। आप ठीक हो जायेंगे।

शास्त्री जी ' (क्षीण स्वर में)—ओह ललिता ! देश के शहीदों'''क्षमा करना।'''मैं तुम्हारे ही पास क्षमा माँगने 'आ रहा हूँ।

डा० आर० एन० चुग (शीघ्रता से प्रवेश करते हुए)—अरे ! क्या हुआ ?

शास्त्री जी . (अत्यन्त ही मन्द ध्वनि से)—डॉक्टर साहब बडा'''दर्द है।'''आह'''साँस भी नहीं ली जाती बस' हो चुका'''जो होना था'' हो चुका।

डॉक्टर : (स्टेस्थकोप से परीक्षा करते हुए)—नहीं-नहीं कुछ

नहीं, अभी आप ठीक हो जाएँगे। (शीघ्रता से इजेक्शन लगाता है। रामनाथ से अत्यन्त धीमे स्वर मे) श्री कोसीगिन को फोन करना, वे कुछ डॉक्टरो को तुरन्त भेजे।

(रामनाथ का प्रस्थान)

शास्त्री जी : (लडखडाती आवाज मे)—सब बेकार है।··· डॉक्टर···बस···विदा दीजिए। हाय राम··· हाय राम!

(मूर्च्छित होते हैं)

डॉक्टर (परीक्षा करते हुए)—अरे, बेहोश हो गए? नाडी की गति कितनी तेज है!··· दिल की धडकन का भी पता नही चलता। यदि ऑक्सीजन दी जा सकती···

(किंकर्तव्य-विमूढ-से खडे रह जाते है। कुछ ही क्षणो मे रामनाथ, उसके थोडी देर बाद कुछ रूसी डॉक्टर आते है और वे जाँच आरम्भ कर देते हैं)

डॉ० चुग : बचाइये, डॉक्टर! इन्हे बचा लीजिए!

रूसी डॉक्टर घबराइए नही, हम कोशिश करता है। (एक डॉक्टर उनकी पसलियो को सहलाता है, एक नाडी की गति को देख रहा है, एक उनके हृदय को गति देने की चेष्टा करता है)

रूसी डॉक्टर : (थोडी देर बाद जाँच करके)—सॉरी डॉक्टर चुग, अब कुछ नही हो सकता।

डा० चुग (स्वयं परीक्षण करके, गहरी सांस लेते हुए)—ओह, क्या हो गया? हमारा नेता हमे मँझधार मे छोड गया! अब हम अकेले देश को कैसे जायँगे? हाय··हाय··

(बैठकर रोने लगते हैं)

रामनाथ (चरणों को पकड़कर रोते हुए)—हाय मालिक! कहाँ चले गये? मैं अब किसका होकर रहूँगा?...माता जी से क्या कहूँगा? हाय! हाय!

(सभी रोने लगते हैं)

पटाक्षेप